अनुवाद- अविनाश चंद्र

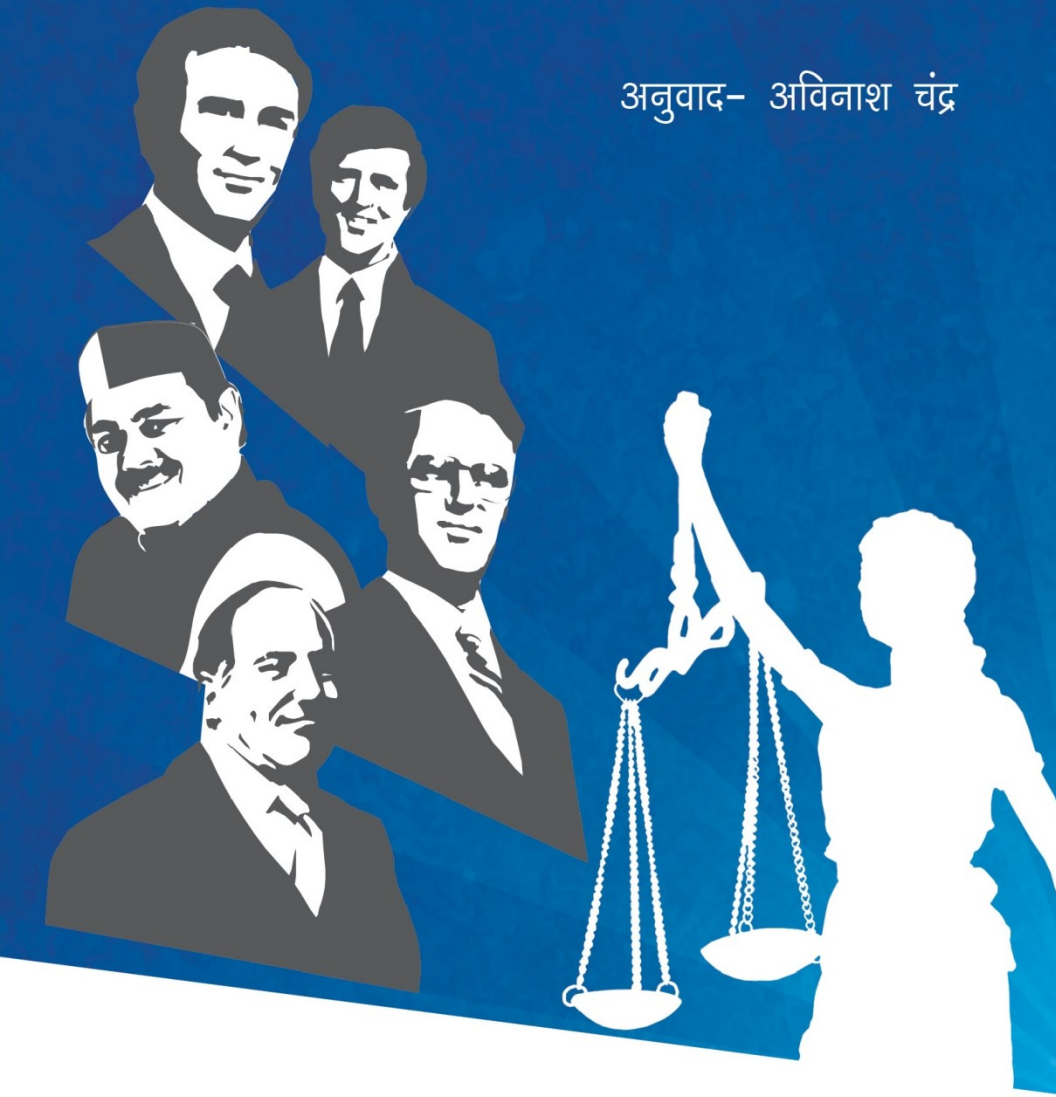

द लॉ

फ्रेडरिक बास्तियात

दलाँ

फ्रेडरिक बास्तियात

अनुवाद– अविनाश चंद्र

दलॉ

फ्रेडरिक बास्तियात

लुडविग वॉन माइसेस इंस्टिट्यूट
ऑबर्न, अल्बामा

आवरणः उषा सोंधी कुंडू, सेंटर फॉर सिविल सोसाईटी

चित्रणः जीन पियरे होयेल (1735 –1813) द्वारा।
बिब्लियोदक्यू नेशनाले डे फ्रांस से इसके प्रयोग के लिए अनुमति ली गई थी।

द लुडविग वॉन माइसेस इंस्टिट्यूट द्वारा कॉपीराईट © 2007

चीन में मुद्रित

लुडविग वॉन माइसेस इंस्टिट्यूट द्वारा प्रकाषित

518 वेस्ट मैग्नोलिया एवेन्यू, ऑबर्न, अल्बामा 36832

www.mises.org

ISBN: 978-1-933550-14-5

प्रस्तावना

आज़ादी के विचारों पर आधारित निजी पुस्तकालय की स्थापना कर रहे प्रत्येक व्यक्ति को वहां फ्रेडरिक बास्तियात के श्रेष्ठ निबंध, 'द लॉ' की एक प्रति को अवश्य शामिल किया जाना चाहिए। महान फ्रांसीसी अर्थशास्त्री व पत्रकार द्वारा वर्ष 1850 में प्रथम प्रकाशित यह निबंध उतना ही स्पष्ट है जितना कि स्वतंत्रता का ऐलान करते समय सर्वकालीन आदर्श अमेरिकी सरकार के बाबत की गई घोषणा, कि किसी भी सरकार का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों के जीवन, आजादी और संपत्ति की रक्षा करना है।

बास्तियात का मानना था कि प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्रदत्त 'व्यैक्तिकता, स्वतंत्रता और संपत्ति' का नैसर्गिक अधिकार प्राप्त है। उन्होंने लिखा था, 'यह मनुष्य है'। 'ईश्वर द्वारा प्रदत्त ये तीन उपहार मनुष्यों द्वारा निर्मित समस्त कानूनों के पहले आते हैं।' किंतु 1840 के दशक के उत्तरार्ध के दौर में, जब बैस्टियेट लेखन कार्य किया करते थे उसी समय उन्होंने कानून के वास्तविक स्वरूप को विकृत करके कानूनी लूटपाट के उपकरण के रूप में परिवर्तित कर देने के बाबत सतर्क किया था। व्यैक्तिक अधिकारों की रक्षा करना तो दूर, यहां तो कानून लगातार नागरिकों के एक समूह व विशेष रूप से राज्य को लाभ पहुंचाने के लिए दूसरे समूह को अधिकारों से मरहूम रखने का काम कर रहा था। उन्होंने संरक्षणवादियों के द्वारा की जाने वाली कानून सम्मत लूटखसोट, समस्त प्रकार की सरकारी सब्सिडियों, प्रगतिशील कराधान, सरकारी स्कूलों, सरकारी रोजगार कार्यक्रमों, न्यूनतम मजदूरी वाले कानूनों, लोक कल्याण, ब्याजखोरी वाले कानूनों इत्यादि की कड़ी भर्त्सना की।

बास्तियात द्वारा कानूनी लूटपाट के खतरनाक परिणाम होने संबंधी चेतावनी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि उस समय थी जब इसका पहली बार प्रयोग किया गया था। उन्होंने लिखा था कि कानूनी लूटपाट वाली व्यवस्था (आजकल कई लोग इसे लोकतंत्र का नाम देकर उत्सव मनाते हैं) लोगों की अंतरात्मा से न्याय व अन्याय के बीच के फर्क को समाप्त कर देगी। लूटे-पिटे वर्ग अंततः राजनैतिक खेल में प्रवेश करने का रास्ता ढूंढ लेंगे और अन्य लोगों

को लूटने का काम शुरू कर देंगे। कानून न्याय के सिद्धांत से कभी भी निर्देशित नहीं होगा बल्कि क्रूर राजनैतिक शक्तियों के हिसाब से संचालित होगा।

आज़ादी के इस महान फ्रांसीसी समर्थक ने सरकारों द्वारा शिक्षा में भ्रष्टाचार की भी भविष्यवाणी की थी। उन्होंने लिखा था कि ऐसे लोग जो सरकारी वेतन वाले शैक्षणिक पदों पर आसन्न होंगे, सरकारी वृत्ति बंद न होने तक कदाचित ही इस कानूनी लूटपाट का विरोध करेंगे।

कानूनी लूटपाट की यह प्रणाली समाज में राजनीति की महत्ता को भी बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करेगी। ऐसी स्थिति समाज के लिए अत्यंत अस्वस्थकर होगी क्योंकि तब वस्तुओं का उत्पादन करने और सेवा प्रदान कर लाभ कमाने की बजाए अधिक से अधिक लोग राजनीति में प्रवेश कर साथी नागरिकों के साथ कानूनी लूटपाट कर संपन्नता हासिल करने के प्रति प्रोत्साहित होंगे।

बास्तियात भी अत्यंत समझदार थे और उन्होंने उस बात का पूर्वानुमान लगा लिया था जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री 'रेंट सीकिंग' अर्थात किराया वसूली (सत्ताधारियों के साथ लॉबिंग कर गैर वाजिब लाभ कमाना) व 'रेंट अवॉय्डेंस' अर्थात किराया चुकाने से बचना (सत्ताधारियों के साथ लॉबिंग कर कर आदि से बचना) कहते हैं। ये दो फूहड़ वाक्यशैली (रेंट सीकिंग व रेंट अवॉय्डेंस) क्रमशः राजनैतिक कृपा (कानूनी लूटपाट) प्राप्त करने के लिए गुटबंदी करने की घटना व स्वयं को लूटपाट का शिकार होने से बचाने के लिए राजनैतिक गतिविधियों से जुड़ने व संरक्षण प्राप्त करने की घटना के लिए प्रयुक्त की जाती है। उदाहरण के लिए, स्टील उत्पादक उद्योग स्टील की ऊंची कीमत के लिए लॉबिंग करते हैं जबकि स्टील का प्रयोग करने वाले उद्योगों जैसे कि ऑटोमोबाइल उद्योग आदि स्टील की ऊंची कीमतों के विरोध में लॉबी करेंगे।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के लिए रेंट सीकिंग जैसी गतिविधियां इसमें निवेश होने वाले अवसर लागत के कारण चिंता का सबब बनती हैं क्योंकि व्यापारियों द्वारा राजनीति जोड़तोड़ के लिए धूर्तबाजी करने में ज्यादा समय और प्रयास व्यतीत किया जाता है (जिससे केवल

धन का हस्तांतरण एक स्थान से दूसरी स्थान तक होता है) और वस्तुओं के उत्पादन व सेवा प्रदान करने के कार्य में कम समय दिया जाता है (जिससे कि धन का सृजन होता है)। इस प्रकार, कानूनी लूटपाट पूरे समाज को दरिद्र बनाता है इस तथ्य के बावजूद कि समाज का एक छोटा (किंतु राजनैतिक रूप से प्रभावशाली) हिस्सा इससे लाभान्वित होता है।

यह उल्लेखनीय है कि 'द लॉ' पुस्तक में बास्तियात ने अपने समय की सांख्यिकी को इतने सटीक ढंग से वर्णित किया है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह आज की या किसी अन्य दिन की सांख्यिकी से बिल्कुल अलग नहीं है। बास्तियात के समकालीन फ्रांसिसी 'समाजवादियों' ने ऐसे सिद्दांतों को आत्मसात किया था जिसने परोपकार, शिक्षा, और रश्म-ओ-रिवाज सभी को एक ही रूप में विकृत कर दिया। बास्तियात ने बताया कि वास्तविक परोपकार की शुरूआत कर रूपी डकैती से नहीं होती है। सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली तालीम सच्ची शिक्षा नहीं होती, यह अवश्यंभावी रूप से मत परिवर्तन (ब्रेनवाश) करने का अभ्यास है। और एक बड़े गिरोह (सरकार) द्वारा आबादी के एक हिस्से के साथ लूटपाट (कानूनी) करने और लूट के माल के छोटे से हिस्से को विभिन्न जरूरतमंद लोगों में बांटना बमुश्किल नैतिक है।

विश्व के आगामी समस्त आततायियों व निरंकुशों के बाबत पूर्वानुमान में बास्तियात ने पता लगा लिया था कि समाजवादी 'भगवान बनना' चाहते हैं और अपनी कल्पना के हिसाब से वे विश्व का पुनर्निर्माण करने का प्रयास करेंगे भले ही वह कल्पना वामपंथ, फांसीवाद, गौरवशाली संघ अथवा वैश्विक लोकतंत्र की हो। बास्तियात ने यह भी गौर किया कि समाजवादी जबरन अनुरूपता, व्यापक विनियमन के माध्यम से आबादी का कठोर नियंत्रण, धन की बल पूर्वक समानता और तानाशाही चाहते थे। जैसे कि वे स्वतंत्रता के प्राणघाती दुश्मन हों।

"तानाशाही" वाली व्यवस्था के लिए किसी वास्तविक तानाशाह का ही होना जरूरी नहीं है। बास्तियात के मुताबिक, आवश्यकता महज़ कांग्रेस अथवा संसद द्वारा पारित कानून को जबरन लागू कराने की

है और इससे भी तानाशाही वाले प्रभाव को हासिल किया जा सकता है।

बास्तियात ने यह भी जान लिया था कि दुनिया में 'महान लोगों' और 'देश के राष्ट्रपिताओं' आदि की संख्या बहुत अधिक है, जो वास्तव में दूसरों पर शासन करने की बीमार व बाध्यकारी इच्छा रखने वाले बड़े आततायियों के अलावा कुछ और नहीं होते हैं। मुक्त समाज के समर्थकों को ऐसे समस्त लोगों के प्रति स्वस्थ निरादर की भावना रखनी चाहिए।

बास्तियात अमेरिका की तारीफ किया करते थे और 1850 के दशक के अमेरिकी सरकार को दुनिया की किसी अन्य सरकार की तुलना में एक समाज के लिए आवश्यक आदर्श सरकार की मान्यता के ज्यादा करीब पाते थे। एक ऐसी सरकार जो व्यक्ति के जीवन, आजादी और संपत्ति के अधिकारों की सुरक्षा करती थी। हालांकि उसमें गुलामी और संरक्षणवादी कीमतों (स्लेवरी एंड प्रोटेक्शनिस्ट टैरिफ) की जुड़वां बुराइयों जैसे दो बड़े अपवाद भी थे।

वर्ष 1850 में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर फ्रैडरिक बास्तियात का निधन हो गया और इस प्रकार, जिस अमेरिका की वह काफी तारीफ किया करते थे उस अमेरिका में अगले डेढ़ दशक (और उससे अधिक) के दौरान होने वाले हिंसक राजनैतिक उथल पुथल भरे बदलाव को देखने के लिए जीवित नहीं रहें। अपने स्वतंत्रता घोषणापत्र में जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा का वचन देने वाले उसी अमेरिकी सरकार द्वारा वर्ष 1861 में दक्षिणी राष्ट्रों पर किए गए सैन्य हमलों को मान्यता नहीं देते जिसके कारण 3 लाख से ज्यादा नागरिकों की हत्या हुई और उस क्षेत्र के शहरों, कस्बों, खेतों और व्यवसायों पर बॉम्ब गिराया गया, आग लगा दी गयी और लूटपाट की गयी। यदि वह उस समय तक जीवित होते तो इन सभी घटनाओं को देख सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों को कानूनी लूटपाट की जगह कानूनी हत्या की उपमा देते हुए इसे सरकारों के सबसे घृणित दो कार्यों में से एक के तौर पर उल्लेखित करते। उन्हें संभवतः रिपब्लिकन पार्टी को उसके औसत 50 प्रतिशत टैरिफ की दर, भारी भरकम कॉर्पोरेट कल्याण वाली योजनाओं व

प्लेन इंडियन्स को अमेरिकी आदर्श की बजाए पहले दर्जे के लुटेरे और राष्ट्रद्रोही घोषित कर उनके खिलाफ 25 वर्ष तक चला नरसंहार वाला अभियान भी देखने को मिलता।

"द लॉ" पुस्तक के आगे के पृष्ठों पर विचारशील सलाह देते हुए बास्तियात ने समाजवादी व्यवस्था के विपरीत मुक्त समाज में सौहार्द के होने अथवा न होने की व्याख्या करने वाले "अर्थशास्त्र के विज्ञान" की आवश्यकता पर बल दिया है। इस संबंध में बड़ा योगदान उन्होंने स्वयं अपनी पुस्तक 'इकोनॉमिक हारमोनीज़' (Economic Harmonies) प्रकाशित करके दी है जिसे ऑस्ट्रियन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक के आधुनिक साहित्य के अग्रदूत के रूप के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। जब विध्वंसकारी समाजवादी योजनाओं से मुकाबले की बात आती है तो बाजार की प्रक्रिया (और राजनीति की वास्तविकताओं) की गहरी समझ रखने का कोई विकल्प नहीं है। इन योजनाओं से बास्तियात के दौर का समाज भी त्रस्त था और आज के हमारे समय का समाज भी त्रस्त है। जो कोई बास्तियात के इस शानदार निबंध को मुक्त व्यापार प्रक्रिया पर आधारित अन्य श्रेष्ठ पुस्तकों जैसे कि हेनरी हैजलिट के "इकोनॉमिक इन वन लेसन" व मुर्रे रॉदबार्ड के "पॉवर एंड मार्केट" को पढ़ता है तो उसके पास इस या किसी अन्य दिन की कोरी समाजवादी कल्पनाओं को खारिज करने के लिए पर्याप्त बौद्धिक अस्त्र शस्त्र उपलब्ध हो जाएगा।

– थॉमस जे. डिलॉरिन्ज़ो
मई 2007

– थॉमस डिलॉरिन्ज़ो, मैरीलैंड स्थित लॉयोला कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं और माइसेस इंस्टिट्यूट के वरीष्ठ प्राध्यापक हैं।

"द लॉ"[1]

[1] प्रथम प्रकाशन वर्ष 1850.

कानून पथभ्रष्ट हो गया है! कानून – और, इससे संबंधित राष्ट्र की समस्त शक्तियां सामूहिक रूप से न केवल अपने वास्तविक मार्ग से विचलित हो गयी हैं बल्कि मैं तो कहूंगा कि वे सर्वथा विपरीत मार्ग पर बढ़ रही हैं! लोभ व लोलुपता की राह में रुकावट बनने की बजाए आज कानून समस्त प्रकार के लोभ की पूर्ति का उपकरण बन गया है! जिन अनैतिक व गैर कानूनी गतिविधियों को दंडित करना कानून का मूल उद्देश्य था वही कानून आज उन्हीं गतिविधियों का कसूरवार है! वास्तव में यदि ऐसा है, तो यह अत्यंत गंभीर विषय है और इस बाबत सभी साथी नागरिकों को आगाह करने के प्रति मैं बाध्य हूं।

हमें ईश्वर द्वारा प्राप्त जीवन रूपी उस उपहार का अनुष्ठान करना चाहिए जिसमें हमारी आवश्यकता से संबंधित समस्त नियामतें (भौतिक, बौद्धिक व नैतिक आदि) शामिल हैं।

लेकिन जिंदगी अपने आप से नहीं चलती। जिसने हमें यह जीवन प्रदान किया है, उसने ऐसा उस विश्वास के साथ किया है कि हम इसका ख्याल रखेंगे, इसकी देखभाल करेंगे, इसे विकसित करेंगे और इसे श्रेष्ठता प्रदान करेंगे। इस प्रयोजन के लिए, ईश्वर ने हमें तमाम अद्‌भुत योग्यताएं और क्षमताएं प्रदान की हैं। उसने हमें विभिन्न प्रकार के तत्वों के संयोजन से तैयार किया है। अपनी क्षमताओं का उन तत्वों पर प्रयोग कर आत्मसात व विनियोग के सिद्धांत (जिसपर सारा जीवन चक्र आधारित है) का अनुभव किया जा सकता है।

अस्तित्व, योग्यताएं, आत्मसात्करण– को ही दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व (निजता), स्वतंत्रता, संपत्ति कहते हैं। यही मनुष्य है।

यही वे तीन चीजें हैं जिन्हें कहा जा सकता है कि जननायकत्व वाली जटिलताओं के अतिरिक्त समस्त मानवीय विधानों (मानव निर्मित कानूनों) से आगे और श्रेष्ठ है।

ऐसा नहीं है कि इंसान ने कानून बनाएं हैं इसलिए व्यक्तित्व (निजता), स्वतंत्रता व संपत्ति का अस्तित्व है। इसके उलट, क्योंकि व्यक्तित्व, स्वतंत्रता और संपत्ति पहले से अस्तित्व में है इसलिए

इंसान ने कानून बनाएं। तो फिर कानून है क्या? जैसा कि मैं सभी जगह कहता हूं, कानून व्यक्तिगत अधिकारों के नियम सम्मत रक्षा के लिए सामूहिक संगठन है।

प्रकृति या यूं कहें कि ईश्वर ने हम सभी को अपने व्यक्तित्व (निजता), अपनी स्वतंत्रता और अपनी संपत्ति की रक्षा करने के अधिकारों से युक्त बनाया है क्योंकि ये तीन घटक जीवन को संरक्षित करने वाले अवयव हैं और प्रत्येक अवयव एक दूसरे से प्रतिपादित होते हैं और उनकी व्याख्या एक दूसरे के बिना नहीं की जा सकती है। हमारी योग्यताएं कुछ और नहीं बल्कि हमारे व्यक्तित्व (निजता) का विस्तार हैं। इसी प्रकार, हमारी संपत्ति कुछ और नहीं बल्कि हमारी योग्यताओं का विस्तार है।

यदि प्रत्येक व्यक्ति के पास अपने व्यक्तित्व (निजता), अपनी स्वतंत्रता और अपनी संपत्ति की रक्षा करने का अधिकार हो तो कई लोग एक साथ मिलकर एक सेना का निर्माण कर सकते हैं और नियमित रूप से इसकी रक्षा कर सकते हैं।

निजी अधिकारों के बाबत सामूहिक अधिकारों के अपने कुछ सिद्धांत होते हैं और इसके अस्तित्व का कुछ प्रयोजन होता है, इसकी वैधता होती है। इसके साथ ही अधिकारों की रक्षा के जिस उद्देश्य के तहत इस सेना का गठन किया गया होता है उसके अतिरिक्त इसका किसी अन्य मद में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जैसे, किसी निजी सेना को किसी दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व (निजता), स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार में हस्तक्षेप का कानूनी अधिकार नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार किसी सामूहिक (सार्वजनिक अथवा सरकारी) सेना को अन्य व्यक्तियों की निजता, स्वतंत्रता और संपत्ति को क्षति पहुंचाने का कानूनी अधिकार नहीं दिया जा सकता।

प्रत्येक मामलों में सेना की ऐसी कार्य विकृति हमारी सीमा के अधिकार का विरोधाभासी होगा। यह कहने का साहस कौन करेगा कि सेना हमारे अधिकारों की रक्षा के लिए नहीं है बल्कि हम सभी के समान अधिकारों को नष्ट करने के लिए है? और यदि यह स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले उन सभी निजी सेनाओं के लिए सत्य नहीं

है तो यह अलग अलग कार्यरत सेनाओं के संगठन के तौर पर कार्यरत सामूहिक सेनाओं के लिए यह सत्य कैसे हो सकता है?

इसलिए, इससे बड़ा साक्ष्य कुछ और नहीं हो सकता किः कानून हमारे नैसर्गिक अधिकारों के संविधान सम्मत रक्षा करने की संस्था है। यह अपनी निजता, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा के अधिकार के तहत गठित व्यक्तिगत सेनाओं का सामूहिक विकल्प है ताकि यह सभी के अधिकारों की रक्षा कर सके और सभी के साथ न्याय हो सके।

और यदि इस आधार पर स्थापित लोग अस्तित्व में होते हैं, तो मुझे लगता है कि उनके बीच उनके आदेशों के साथ-साथ उनके विचारों में भी एक व्यवस्था होगी। मुझे लगता है कि ऐसे लोग सबसे अधिक सरल, सबसे किफायती, कम से कम दमनकारी, कम से कम महसूस किये जाने वाले, सबसे अधिक नियंत्रित, सबसे अधिक न्यायप्रिय होते होंगे और इस कारण उनकी सरकार, जिसका राजनैतिक स्वरूप चाहे जो भी होता होगा, सबसे स्थिर सरकार होती होगी।

ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था के तहत प्रत्येक व्यक्ति अपने को पूर्ण महसूस करता होगा और अपने अस्तित्व की जिम्मेदारियों को भी समझता होगा। जब तक व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुनिश्चित होती होगी, जब तक श्रम मुक्त होता होगा, और जब तक श्रम का फल समस्त प्रकार के आक्रमणों से सुरक्षित होता होगा, किसी भी व्यक्ति को राज्य में संतुष्टि प्राप्त करने में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता होगा। यह सत्य है कि जब हम समृद्ध होते हैं तो हमें सरकार को अपनी सफलता के लिए धन्यवाद देने की जरूरत नहीं पड़ती। किंतु जब बदकिस्मती से कोई आपदा आ जाए, जैसे हमारे किसानों पर ओले या पाले की मार पड़ जाए, तो हमें किसी प्रकार के कर आरोपित करने के बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। हमें इसकी जानकारी सिर्फ सुरक्षा की अतुलनीय सौभाग्य के साथ होनी चाहिए।

इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि, व्यक्तिगत मामलों में राज्य के हस्तक्षेप न करने के लिए धन्यवाद, हमारी इच्छाएं और उनकी संतुष्टि अपने प्राकृतिक क्रम में खुद को विकसित करेगी। हमें गरीब

परिवारों को रोटी की आपूर्ति करने के पूर्व साहित्यिक दिशा निर्देश देने के बारे में नहीं सोचना चाहिए। हमें ग्रामीण जिलों की कीमत पर कस्बों और कस्बों की कीमत पर ग्रामीण जिलों का विचार नहीं करना चाहिए। हमें पूंजी, श्रम और आबादी के बड़े स्तर पर विस्थापन के बारे में नहीं सोचना चाहिए। विस्थापन जो अस्तित्व के बहुत ही अनिश्चित और खतरनाक स्रोत प्रस्तुत करते हैं, और इस प्रकार काफी हद तक सरकार की जिम्मेदारी बढ़ती है।

बदकिस्मती से, कानून किसी भी हाल में अपने निर्धारित हद के भीतर सीमित नहीं रह गया है। ऐसा भी नहीं है कि यह महज कुछ अस्पष्ट और विवादास्पद विचारों के मामले में ही अपनी सीमाओं से बाहर गया है। इसने ऐसा इससे कहीं अधिक मामलों में किया है। इसने अपनी दिशा के बिल्कुल विपरीत जाने का काम किया है। इसने अपने ही उद्देश्य को नष्ट करने का काम किया है। जिस न्याय की स्थापना करना इसका उद्देश्य था, उसे ही मिटाने के काम में इसका इस्तेमाल किया गया है। इसने सामूहिक सेना को उन लोगों की सेवा के कार्य में लगा दिया जो बिना किसी जोखिम और झिझक के दूसरों की निजता, स्वतंत्रता और संपत्ति का हनन करना चाहिते हैं। इसने लूटमार को ऐसा अधिकार बना दिया है जिसकी वह स्वयं रक्षा करेगा। साथ ही इसने कानूनी तौर पर अपनी हिफाजत को ऐसा अपराध बना दिया है जिसे यह दंडित कर सके। कानून में यह विकृति कहां से आ गयी? और इसका क्या परिणाम हुआ है?

कानून, दो अत्यंत ही अलग अलग कारणों के प्रभाव के द्वारा विकृत हुआ है- लालच और परोपकार की गलत धारणा।
सर्वप्रथम, पहले कारण पर बात करते हैं। आत्म रक्षा और विकास सभी मनुष्यों की एक ऐसी सामान्य आकांक्षा है। ऐसी स्थिति में यदि सब लोग अपनी क्षमताओं के अनुरूप कार्य करने लगें और वस्तुओं का मुक्त आदान प्रदान होने लगे तो सामाजिक प्रगति निरंतर, निर्बाध और अपरिहार्य हो जाएगी।

लेकिन उनके बीच एक आदत और बहुत सामान्य है। और वह यह है कि जितना हो सके दूसरों की कीमत पर जीवन यापन करना और विकास करना। यह किसी विषादपूर्ण स्थिति और संगदिल वाली

भावना के कारण लगाया गया छोटा मोटा इल्जाम नहीं है। निरंतर युद्धों, प्रजातियों के विस्थापन, साम्प्रदायिक उत्पीड़न, गुलामी की सार्वभौमिकता, व्यापार में धोखाधड़ी और एकाधिकार का प्रचूर व वर्ष दर वर्ष की घटनाओं का इतिहास गवाह रहा है। इस घातक प्रवृति का मूल इंसान की रचना, उसके आदिम, सार्वभौमिकता, अविजित रहने की भावना में है जो उसे अपने हित की सोचने और श्रम व दर्द से बचने की भावना में निहित है।

इंसान को खुशी और आनंद की प्राप्ति केवल उस सतत खोज और उसके विनियोग से होती है जो कि उसकी योग्यताओं अथवा श्रम से वस्तु को हासिल करने में उसकी मदद करता है। यहीं से संपत्ति के सृजन की शुरूआत होती है।

लेकिन इंसान अन्य व्यक्तियों की योग्यताओं और उत्पादों पर नियंत्रण कर भी सुखी और आनंदित रह सकता है। यहीं से लूटखसोट वाली प्रवृति की शुरूआत होती है।

श्रम करना अपने आप में कष्टकारी होता है जबकि मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृति पीड़ा और कष्टों से परहेज करने की होती है। इस प्रकार इतिहास गवाह रहा है कि चूंकि लूटपाट का काम श्रम से कम कष्टकर होता है अतः यह प्रचलन में अधिक होता है। और ऐसी स्थिति में न तो कोई धर्म और न ही कोई नैतिकता लूटपाट के काम को प्रचलन में आने से रोक सकती है।

तब, लूटपाट कैसे रूकती है? यह तब रूकती है जब ऐसा करना श्रम से ज्यादा कष्टकारी और खतरनाक हो जाता है। इस प्रकार, यह लाज़मी है कि कानून का उद्देश्य लूटपाट वाली घातक प्रवृति के खिलाफ सामूहिक शक्तियों की सहायता से मजबूत ढाल बनकर खड़ा होना और हर संभव तरीके से संपत्ति की रक्षा करना है।

किंतु आम तौर पर कानून का निर्माण एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक वर्ग द्वारा किया जाता है। और चूंकि कानून के अस्तित्व के साथ आम सहमति और प्रधानतायुक्त बल जुड़े होते हैं इसलिए अंत में यह शक्ति और सहमति उन हाथों में चली जाती है जो कानून के निर्माता होते हैं।

यह न टाली जा सकने वाली घटना, मनुष्य के हृदय में बसने वाली उस घातक प्रवृति, जिसके बारे में हम बात कर चुके हैं, के साथ मिलकर कानून की सार्वभौमिक विकृति की प्रक्रिया की व्याख्या करती है। इस प्रकार, यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि अन्याय की रोकथाम करने की बजाय यह अन्याय करने का सबसे अजेय साधन कैसे बन जाता है।

इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है कि किसी प्रकार कानून निर्माताओं के इशारों पर, स्वहित और कुछ हद तक अन्य समुदायों के लाभार्थ, गुलामी के द्वारा निजी स्वतंत्रता, दमन के द्वारा आजादी और लूट पाट के द्वारा समृद्धि के लिए इसे नष्ट कर दिया जाता है।

मनुष्य की प्रवृति अपने साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ खड़े होने की होती है। इसलिए जब लूटपाट कानून के संरक्षण में होता है तो लूटपाट की ओर अग्रसर सभी वर्गों का प्रयास, शांतिपूर्ण तरीके से अथवा क्रांति के माध्यम से, कानून निर्माण की प्रक्रिया में शामिल होने का होता है। अपने राजनैतिक अधिकारों को हासिल करने के प्रयास के तहत ये वर्ग अपनी अपनी समझ के अनुसार, या तो कानून सम्मत लूटपाट को समाप्त करने की ईच्छा जाहिर करते हैं अथवा वे स्वयं ऐसा करने की मंशा रखते हैं।

ऐसे राष्ट्र को धिक्कार है जहां सत्ता में शामिल होने की अपनी बारी आने के दौरान जनता द्वारा उपरोक्त दूसरे प्रकार का अर्थात स्वयं कानून सम्मत लूटपाट के कार्य में शामिल होने का विचार अपने दिमाग में लाई जाती हैं!

लंबे समय से, मुट्ठी भर लोगों के द्वारा जनता के साथ कानूनी लूटपाट का काम किया जाता रहा है क्योंकि देशों में कानून बनाने का अधिकार कुछ हाथों तक ही सीमित रहता है। लेकिन अब यह सार्वभौमिक हो गया है, सार्वभौमिक लूट में संतुलन की मांग भी होने लगी है। समाज में व्याप्त अन्याय को दूर किए जाने की बजाय उसका सामान्यीकरण किया जाने लगा। लेकिन जैसे ही पीड़ित वर्ग के हाथ राजनैतिक अधिकार लगे, उनके मन में पहला विचार उन

कानूनी लूटपाट की व्यवस्था को समाप्त करने का नहीं (इससे उनके जागरुक होने की उम्मीद की जाती है जो कि वे नहीं कर सकते हैं) बल्कि अन्य वर्गों के खिलाफ इस्तेमाल करने और अपनी हानि की भरपायी के लिए दूसरों के साथ प्रतिकार करने का होता है। इसके पूर्व कि न्याय के शासन की स्थापना हो, यह एक तरीके से जरूरी सा हो गया है कि सबको एक क्रूर प्रतिशोध से होकर गुजरना ही पड़ेगा। कुछ को अपने धर्म के कारण को कुछ को उनकी अज्ञानता के कारण।

इसप्रकार, समाज में एक महान महान परिवर्तन लाने और कानून के लूटपाट के उपकरण में तब्दील होने से ज्यादा बड़ी बुराई को बाहर लाना संभव नहीं होगा।

तो ऐसी विकृतियों का परिणाम क्या होगा? इसकी व्याख्या के लिए कई खंडों वाली पुस्तक की आवश्यकता होगी। हम सभी सबसे ज्वलंत मुद्दे को समक्ष रखते हुए अपने-आप को संतुष्ट रखना होगा। सबसे पहले हमें सभी लोगों के मन से न्याय व अन्याय के बीच के अंतर को स्पष्ट करना होगा। कोई भी समाज तब तक अस्तित्व में नहीं रह सकता जबतक कि कानून को कुछ हद तक सम्मान न मिले। किंतु किसी वस्तु को सम्मानित करने का सबसे आसान तरीका वस्तु को सम्मान योग्य बनाकर है। जब कानून और नैतिकता एक दूसरे की परस्पर विरोधी होती है तो नागरिक स्वयं को नैतिक पतन अथवा कानून के लिए सम्मान खोने जैसे क्रूर विकल्प के बीच पाता है। यह ठीक वैसे ही है जैसे दो बुराईयों के बीच से किसी एक को चुनना।

जनता के दिमाग में यह धारणा होती है कि न्याय का समर्थन करना कानून की प्रवृति है और सबके लिए वह एक जैसा व्यवहार करता है। हम सभी की यह दृढ़ मान्यता होती है कि जो कुछ भी कानूनी है, वह अवश्यंभावी तौर पर न्यायसंगत है। यह मान्यता इतनी दृढ़ होती है कि अधिकांश लोग इसकी गलत व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि न्याय कानून से ही मिल सकता है। ऐसी स्थिति कानून के लिए लूटपाट के आदेश देने और इसे मंजूरी देने के लिए पर्याप्त होती है फिर भी अधिकांश लोगों को यह स्थिति विवेकपुर्ण न्याय और पवित्र दिखाई देती है। दासता, संरक्षण और एकाधिकार

जैसे कृत्यों के समर्थकों में न केवल वे लोग शामिल होते हैं जो ऐसी स्थिति का लाभ उठाते हैं बल्कि वे लोग भी समर्थन करते हैं जो ऐसी स्थिति के पीड़ित होते हैं। यदि आप इन संस्थानों की नैतिकता के बारे में संदेह करते हैं या ऐसा करने का सुझाव देते हैं, तो यह सीधे कहा जाता है- "आप एक खतरनाक प्रयोगकर्ता, काल्पनिक आदर्शवादी, एक सिद्धांतवादी व कानून को तिरस्कृत करने वाले हैं और आप उस आधार को अस्थिर कर रहे हैं जिसपर समाज टिका है।"

यदि आप नैतिकता अथवा राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर भाषण देंगे तो अधिकारी सरकार को निम्नलिखित अनुरोध करे हुए पाए जाएंगेः

कि अब से विज्ञान न केवल मुक्त विनिमय (स्वतंत्रता, समृद्धि और न्याय) के संदर्भ में पढ़ाया जाएगा, जैसा कि वर्तमान समय के मामले में है, बल्कि विशेष रूप से, उन तथ्यों और कानूनों के संदर्भ में (स्वतंत्रता के विपरीत, संपत्ति और न्याय) जो कि फ्रांसीसी उद्योग को विनियमित करते हैं।

कि, राजकोष के खर्चे पर आयोजित होने वाले सार्वजनिक व्याख्यानों में प्रोफेसर कानून के कारण पैदा होने वाला जो थोड़ा बहुत आदर है उसे लगातार खतरे में डालते हैं।[2]

इस प्रकार, यदि ऐसा कानून अस्तित्व में है जो किसी भी रूप में दासता अथवा एकाधिकार, दमन अथवा लूटपाट को मंजूरी देता है, का जिक्र भी नहीं किया जाना चाहिए – क्योंकि जिस आदर की भावना को यह प्रेरित करता है उसे नुकसान पहुंचाए बगैर उसका जिक्र भी कैसे किया जा सकता है? इसके बावजूद, नैतिकता और राजनैतिक अर्थव्यवस्था को कानून के संदर्भ में पढ़ाया जाना चाहिए – कि चूंकि यह कानून सम्मत है इसलिए इसका न्यायपूर्ण होना अवश्यंभावी है।

[2] जनरल काऊंसिल ऑफ मैन्युफैक्चरर्स, एग्रीकल्चर एंड कॉमर्स, 6 मई, 1850.

कानून की खेदजनक विकृति का एक और प्रभाव यह है कि यह इंसान को जुनून और राजनैतिक संघर्ष देता है। आम भाषा में कहें तो राजनीति को कथित तौर पर अतिरंजित महत्व देता है।
मैं एक हजार तरीकों से यह तर्क साबित कर सकता हूं। लेकिन, मैं खुद को एक दृष्टांत तक ही सीमित रखूंगा, ताकि लोगों की सोच को उस विषय तक केंद्रीत रख सकूं जिसने हाल के समय में हर किसी के दिमाग पर कब्जा कर लिया गया है: सार्वभौमिक मताधिकार।

उन्नत विचार रखने की मान्यता वाले रूसो स्कूल के प्रवीणतम विशेषज्ञ, जिन्हें मैं 20 शताब्दी पिछड़ा मानता हूं, की राय चाहे जो भी हो लेकिन सार्वभौम मताधिकार का सिद्धांत जहां परीक्षण और संदेह अपराध माना जाता हो, पवित्र सिद्धांत नहीं हो सकता है।
इस पर गंभीर आपत्तियां हो सकती हैं।

पहली बात तो यह कि, सार्वभौमिकता नामक शब्द सकल कुतर्क को छिपाता है। फ्रांस की कुल आबादी 36,000,000 है। सार्वभौमिक मताधिकार के लिए 36,000,000 मतदाताओं की गणना करनी होगी। उपलब्ध श्रेष्ठ प्रणाली केवल 9,000,000 मतदाताओं की गणना करने में सक्षम है। इस प्रकार चार में से तीन लोग प्रक्रिया से बाहर हो जाते हैं, इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि प्रक्रिया से बाहर होने वाले तीन लोग चौथे व्यक्ति के कारण बाहर होते हैं। प्रक्रिया से बाहर करने का यह सिद्धांत किस तर्क पर आधारित है? असक्षमता के सिद्धांत पर। तब, सार्वभौमिक मताधिकार का तात्पर्य तो जो सक्षम हैं उनके लिए सार्वभौमिक मताधिकार का अधिकार हुआ। तथ्यात्मक आधार पर, सक्षम कौन है? क्या केवल उम्र, लिंग, और न्यायिक निंदाए ही वो शर्त होगी जिससे अक्षमता संल्गन है?

विषय का करीबी मूल्यांकन करने पर हमें जल्द ही यह कारण समझ में आ जाएगा कि क्यों मताधिकार का अधिकार अक्षमता के अनुमान पर निर्भर करता है; सबसे अधिक विस्तारित प्रणाली उन स्थितियों में सबसे अधिक प्रतिबंधित है जिसमें यह अक्षमता निर्भर

करती है, जो लोगों के मध्य सिद्धांत आधारित नहीं बल्कि पदवी के आधार पर भेद करता है।

इसका उद्देश्य यह है कि निर्वाचक स्वयं को छोड़ सबके लिए सिद्धांत निर्धारित करे।

ग्रीक और रोम के रिपब्लिकन्स के द्वारा बनाए जाने वाले बहाने के मुताबिक मताधिकार का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को उसके जन्म से ही प्राप्त है, और यदि महिलाओं और बच्चों को मतदान से रोका जाएगा तो यह उन सभी व्यस्कों के साथ अन्याय सरीखा होगा। उन्हें क्यों रोका जाता है? इसलिए क्योंकि उन्हें असक्षम मान लिया गया है। और असक्षमता निर्वासन का कारण क्यों होना चाहिए? चूंकि अपने वोट की जिम्मेदारी अकेले मतदाता नहीं उठाता, चूंकि प्रत्येक वोट समुदाय को बड़े पैमाने पर सम्मिलित और प्रभावित करता है; चूंकि समुदाय को कुछ आश्वासनों को मांगने का अधिकार है जैसा कि उन कर्तव्यों के संबंध में है जिनपर उनका कल्याण और अस्तित्व निर्भर करता है।

मुझे पता है कि इसके जवाब में क्या कहा जा सकता है? मुझे पता है कि क्या आपत्ति जताई जा सकती है? किंतु यह जगह ऐसे विवादों के निपटारे के लिए माकूल नहीं है। मैं जिस चीज का अवलोकन करना चाहता हूं यह वही विवाद है (राजनैतिक प्रश्नों के बड़े हिस्से में सामान्य सी बात है) जो राष्ट्र को परेशान करता है, उद्वेलित करता है और उसे बेकाबू करता है और अपनी समस्त महत्ता खो देता है यदि कानून वैसा ही होता जैसा कि उसे होना चाहिए था।

दरअसल, यदि कानून सभी व्यक्तियों का सम्मान करने, सबकी स्वतंत्रता की रक्षा करने और समस्त संपत्ति की रक्षा करने तक सीमित होता – यदि यह महज व्यक्तिगत अधिकारों और सबकी रक्षा सुनिश्चित करने वाले संगठन के रूप तक ही सीमित रहता – यदि यह समस्त प्रकार के उत्पीड़न और लूटपाट जैसे कार्यों की राह का रोड़ा होता, उन्हें रोकने का काम करता और उन्हें अनुशासनात्मक दंड देता – तो क्या बतौर नागरिक सार्वभौमिक मताधिकार के अधिकार के विषय पर हमारा विवाद होता? क्या

ऐसा होता कि सार्वजनिक शांति जैसे महानतम लाभ के मुद्दे पर यह समझौता करता? क्या ऐसा नहीं होता कि निर्वासित वर्ग चुपचाप अपनी बारी आने का इंतजार करता? क्या ऐसा होता कि मताधिकार का प्रयोग करने वाला वर्ग उस प्राप्त विशेषाधिकार पर रश्क करता? और क्या यह स्पष्ट नहीं है कि सभी लोगों की रूचि एक होने और एक जैसा होने में होती, और कुछ लोग दूसरों के लिए असुविधा की स्थिति पैदा किए बगैर काम करते?
किंतु यदि किसी घातक सिद्धांत को प्रस्तावित किया जा सकता है जैसे कि किसी संस्था, नियमन, संरक्षण अथवा प्रोत्साहन आदि के बहाने कानून किसी एक पक्ष से लेकर दूसरे पक्ष को दे सके, या सभी वर्गों से जुटाए गए धन से किसी एक वर्ग, चाहे वह किसानों के लिए हो, उत्पादकों के लिए हो, जलपोत मालिकों के लिए हो अथवा अभिनेताओं और हास्य कलाकारों के लिए हो; को वृद्धि करने में सहायता कर सके तो ऐसे मामलों में तय है कि कोई भी वर्ग ऐसा नहीं होगा जो इसके लिए प्रयास न करे। उन सभी के पास कारण होगा कानून को अपने कब्जे में लेने के लिए और कोई भी चयनित होने के अधिकार और योग्यता की मांग नहीं करेगा बल्कि इसे हासिल करने के लिए समाज को उलट पुलट कर रख देगा। यहां तक कि भिखारी और खानाबदोश भी यह साबित कर देंगे कि उनके पास निर्विवाद तौर पर उसका स्वामित्व है। वे कहेंगे किः हम कभी भी मदिरा, तंबाकू अथवा चखना बिना कर अदा किए नहीं खरीदते हैं और कानून द्वारा इसका एक हिस्सा उन लोगों को अतिरिक्त सुविधाएं व उपलाभ (ग्रेच्युटी) उपलब्ध कराने में खर्च होता है जो हमारे से अधिक समृद्ध और सक्षम हैं। अन्य लोग रोटी, मांस, लोहा व कपड़ों की कीमतों में कृत्रिम वृद्धि कराने के रूप में कानून का प्रयोग कर सकते हैं।

चूंकि सभी लोग अपने स्वयं के हित में कानून का गलत उपयोग करते हैं इसलिए हमें भी ऐसा ही करना चाहिए। हमें इसकी सहायता से सहयोग प्राप्त करने का अधिकार बनाना चाहिए। इसे अमल में लाने के लिए हमें निर्वाचक और विधायक बनना ही होगा ताकि हम बड़े पैमाने पर संगठित हो सकें और अपने स्वयं के वर्ग के लिए दान दे सकें, ठीक वैसे ही जैसे आप अपनी सुरक्षा के लिए बड़े पैमाने पर संगठित हैं। हमें ये मत कहिए कि हमारे मसलों का

हल आप ही ढूंढ लेंगे और हम पर 6 लाख फ्रैंक (फ्रांसीसी मुद्रा) की हड्डी फेंक कर हमें चुप करा लेंगे। हमारे अन्य दावे भी हैं और किसी भी कीमत पर हम उसपर अनुबंध कराना चाहेंगे, जैसा कि अन्य वर्गों ने स्वयं के लिए अनुबंध कराया है!

इन दलीलों का जवाब कैसे दिया जाएगा? हां, जब तक यह मान नहीं लिया जाता है कि कानून को इसके मूल उद्देश्य से भटकाया जा सकता है जिससे कि यह लोगों की संपत्ति की सुरक्षा करने की बजाए संपत्ति के अधिकार को भंग करने लगे, सभी लोग कानून बनाने की कामना रखेंगे। चाहे ऐसा स्वयं को दूसरों के द्वारा किए जाने वाले लूटखसोट से बचाने के लिए करें या फिर ऐसा वे स्वयं के फायदे के लिए करें। राजनैतिक प्रश्न सदैव प्रतिकूल, प्रबल, और दिलचस्प रहेंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो विधानसभा भवन (लेजिस्लेटिव पैलेस) के द्वार पर लोग सदैव गुत्म गुत्थी करते रहेंगे। यह संघर्ष अंदर भी कम नहीं होगा। इस बात के प्रति आश्वस्त होने के लिए यह देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि फ्रांस व इंग्लैंड के चेम्बर्स में क्या चलता है; लेकिन प्रश्न कैसे खड़ा होता है इसे जानने के लिए यह पर्याप्त है।

क्या यह साबित करने की कोई आवश्यकता है कि कानून की यह घृणित विकृति, नफरत और कलह का सतत कारण है और यहां तक कि यह सामाजिक अव्यवस्था की ओर भी अग्रसर रहता है? यूनाइटेड स्टेट्स की तरफ देखो। दुनिया में कोई और देश ऐसा नहीं जहां कानून को उपयुक्त हद के भीतर रखा गया है – जो कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता और संपत्ति को सुरक्षित रखने के लिए है। इस प्रकार, दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां सामाजिक क्रम अधिक ठोस आधार पर टिका प्रतीत होता है। लेकिन फिर भी, यूनाईटेड स्टेट्स में भी प्रारंभ से ही दो प्रश्न, मात्र दो प्रश्न रहे हैं जो राजनैतिक क्रम को खतरे में डाले हुए है। और वह दो प्रश्न कौन कौन से हैं? पहला प्रश्न दासता से संबंधित है और दूसरा कीमतों से जुड़ा है। यही वे दो प्रश्न हैं जो कि कानून ने इस गणराज्य की आम भावना के विपरीत, लूटखसोट वाले चरित्र को अपना रखा है। दासता व्यक्ति के निजी अधिकारों का हनन है जिसे कि कानूनी मान्यता प्राप्त है। संरक्षण, कानून द्वारा प्रदत्त संपत्ति के

अधिकार का हनन है और निश्चित रूप से यह अत्यंत उल्लेखनीय है कि जहां ढेरों मुद्दों पर बहस चल रही है उस दौरान पुरानी दुनिया की खेदजनक विरासत और इस दोहरी कानूनी कोड़े ही केवल एक और शायद अकेला ऐसा मुद्दा है जो संघ के विघटन का कारण बन सकता है। दरअसल, एक आश्चर्यजनक बात यह भी है कि समाज का मन इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि कानून अन्याय का उपकरण बन गया है। और यदि यह मुद्दा यूनाइटेड स्टेट्स के लिए भयानक परिणाम वाले हालात पैदा कर सकता है जहां यह बस एक अपवाद के तौर पर मौजूद है तो फिर हमारे साथ यूरोप में क्या होना चाहिए जहां यह एक सिद्धांत और एक प्रणाली के तौर पर मौजूद है।

मि. कार्लियर के एक मशहूर विचार को अपनाते हुए मि. मोन्टालेम्बर्ट ने कहा, 'हमें समाजवाद के खिलाफ युद्ध छेड़ने ही होगा।' और मि. चार्ल्स ड्यूपिन के मुताबिक समाजवाद की परिभाषा लूटखसोट करना है। लेकिन वह किस लूटखसोट की बात करते हैं? उनके लिए लूटखसोट के दो तात्पर्य हैः पहला कानूनी लूटखसोट, दूसरा कानून के इतर लूटखसोट।

कानून के इतर होने वाले लूटखसोट से तात्पर्य, चोरी अथवा ठगी है जो कि परिभाषित है और जिसका अनुमान लगाया जा सकता है और जिसे दंड संहिता द्वारा दंडित किया जा सकता है। मेरे हिसाब से यह समाजवाद बिल्कुल नहीं है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के लूटखसोट के विरुद्ध युद्ध को मि. मोन्टालेम्बर्ट अथवा मि. कार्लियर द्वारा अनुमति मिलने का इंतजार करने की जरूरत नहीं होती। ऐसा दुनिया की स्थापना के दौरान से ही जारी है और फ्रांस में फरवरी की क्रांति से बहुत पहले से ऐसा होता आया है, जिसका प्राकट्य समाजवाद से बहुत पहले हो चुका था – जिलाधीशी, पुलिस, शान्दर्मेरी (फ्रेंच पुलिसकर्मी), जेल, कालकोठरी व मचान आदि का अनुष्ठान (व्यवस्था) होने से भी पहले। यह स्वयं कानून ही है जिसने यह युद्ध छेड़ रखा है, और इससे यही उम्मीद भी की जाती है। मेरे विचार से कानून को लूटखसोट के संबंद्ध में अपने इस रूख को बरकरार रखना चाहिए।

लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है। कानून कभी कभी स्वयं ही इस कार्य का हिस्सा बन जाता है। कभी कभी तो यह स्वयं अपने हाथों से ही कार्य संपादित करता है ताकि राजनैतिक दलों को शर्मिंदगी, खतरे और झिझक वाले काम का लाभ पहुंचा सके। कभी कभी तो लूटखसोट करने वालों की सेवा में जिलाधीश, पुलिस, जेल आदि समस्त अनुष्ठानों तैनात कर देता है और जब लूटखसोट करने वाली पार्टी बतौर अपराधी अपना बचाव करती है तो यह उनके साथ विशेष बर्ताव करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कानूनी लूटखसोट की व्यवस्था भी उपलब्ध है और निसंदेह मि. मोन्टालेम्बर्ट का तात्पर्य भी यही है।

लूटखसोट का यह मसला एक व्यक्ति के कानून में अपवाद स्वरूप एक मात्र दोष हो सकता है, और इस मामले में बिना भाषण और विलाप किए जो सर्वश्रेष्ठ कार्य किया जा सकता है, वह यह है कि इच्छुक दलों के शोरगुल की परवाह न करते हुए जितनी जल्दी संभव हो इसे दूर किया जाए। लेकिन इसकी पहचान कैसे होगी? बहुत ही आसानी से। बस देखना यह है कि कौन सा कानून किसी व्यक्ति से उसकी चीज लेकर किसी अन्य व्यक्ति को (जिससे यह संबंधित नहीं हो) देना है। देखिए क्या कानून अन्य लोगों की हानि के ऐवज में किसी एक व्यक्ति का लाभ तो नहीं करा रहा। ऐसा लाभ जो अपराध किए बगैर हासिल नहीं किया जा सकता। ऐसा कानून को बिना देरी किए तत्काल ही समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह केवल अन्याय नहीं है बल्कि यह अन्याय का एक उपजाऊ स्त्रोत भी है जो लोगों को प्रतिहिंसा के लिए आमंत्रित करता है। यदि आपने ध्यान नहीं दिया, तो 'अपवाद' वाला यह मामला विस्तारित होता जाएगा, इसमें गुणात्मक वृद्धि होती जाएगी और यह कार्य करने का एक तरीका बन जाएगा। निसंदेह जिस पक्ष का लाभ हो रहा था वे इसे लेकर शोर मचाएंगे, वे प्राप्त अधिकारों का दावा करेंगे। वे कहेंगे कि सरकार उसके धंधे को संरक्षित करने व उसे प्रोत्साहित करने के प्रति बाध्य है। वे दलील देंगे कि राज्य के लिए यह अच्छा है कि वह उसके पास अधिक से अधिक धन हो ताकि वह अधिक से अधिक खर्च कर सके। और इस प्रकार राज्य के पास गरीब श्रमिकों पर वेतन की बौछार करने के लिए पर्याप्त धन होगा। ध्यान रखिए, आपको ऐसे कुतर्कों को नहीं

सुनना चाहिए क्योंकि ये महज व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किए जाने वाले कुतर्क हैं ताकि कानूनी लूटखसोट को व्यवस्थित तरीके से लागू किया जा सके।

और वास्तव में यही हुआ है। एक दूसरे के खर्च पर सभी वर्गों को समृद्ध करने की अवधारणा सबसे बड़ा भ्रम है क्योंकि यह लूटखसोट को संगठित तरीके से करने का ढोंग करते हुए इसका सामान्यीकरण करना है। आपको बता दूं कि कानून सम्मत लूटखसोट को अनगिनत तरीके से अमल में लाया जाता है। इसके तहत अनगिनत योजनाएं लायी जाती हैं जैसे मूल्य दर, संरक्षण, रियायत, उपदान (ग्रेच्युटी), प्रोत्साहन, प्रगतिशील कराधान, मुफ्त सरकारी शिक्षा, काम करने का अधिकार, लाभ अर्जित करने का अधिकार, मजदूरी का अधिकार, सहायता का अधिकार, श्रम के साधनों का अधिकार, ऋण का उपदान (ग्रेच्युटी) आदि, आदि..। यदि इन सभी योजनाओं को एक साथ रख कर देखा जाए तो इन सभी के बीच एक बात जो उभयनिष्ठ होगी वो होगी समाजवाद के नाम पर कानून सम्मत लूटखसोट।

चूंकि समाजवाद को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है और इसे एक सैद्धांतिक संस्था का स्वरूप दे दिया गया है तो इसके खिलाफ सैद्धांतिक युद्ध के अतिरिक्त और किस प्रकार का युद्ध छेड़ा जा सकता है? आप इस सिद्धांत को झूठा, बेतुका और घटिया पाते हैं। इसे खारिज करें।

आप इस सिद्धांत को झूठा, बेतुका, घृणित पाते हैं। इसे खारिज करें। ऐसा करना सरल होगा यह मानना और अधिक झूठ, बेतुका और घटिया होगा। इन सबके इतर, यदि आप सबल बनना चाहते हैं तो अपने कानून में समाहित हो चुके समाजवाद के समस्त कणों को इसमें से बाहर निकालने से इसकी शुरूआत की जा सकती है। हालांकि ऐसा करना आसान काम नहीं है।

मि. मोन्टालेम्बार्ट समाजवाद की कड़ी निंदा करते हुए उसके खिलाफ कड़े बल के प्रयोग की चाहत रखते हैं। उन्हें इस निंदा से बचना चाहिए था जिसके लिए उन्होंने कहा था, 'समाजवाद के

विरुद्ध हमें जिस युद्ध को छेड़ने की जरूरत है वह कानून, सम्मान और न्याय के अनुरूप होना चाहिए।'

लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है कि मि. मोन्टालेम्बार्ट यह नहीं समझ पा रहे कि इस प्रकार तो वह स्वयं को एक दुष्चक्र में फंसा लेंगे? आप समाजवाद की खिलाफत कानून के द्वारा करेंगे। लेकिन यह वही कानून है जिसका आह्वान समाजवाद करता है। इसकी अभिलाषा कानून सम्मत लूटखसोट की है न कि कानून के इतर वाला लूटखसोट। समस्त प्रकार का एकाधिकार रखने वाले व्यक्ति (मोनोपॉलिस्ट) के समान ही यह कानून को भी एक उपकरण बनाना चाहता है। और जब उसके पक्ष में कोई कानून बन जाता है तब आप उसी कानून को उसके खिलाफ कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं? आप इसे अपने न्यायाधिकरण, अपनी पुलिस और अपने कारागारों के तहत कैसे ला सकेंगे? ऐसी स्थिति में तब आप क्या करेंगे? आप चाहेंगे कि उन्हें किसी प्रकार के कानून निर्माण की प्रक्रिया से अलग रखा जाए। आप उसे विधायिका भवन (लेजिस्लेटिव पैलेस) के बाहर रखना चाहेंगे। लेकिन, मैं भविष्यवाणी कर सकता हूं कि आप इसमें तब तक सफल नहीं हो सकेंगे जब तक कानून सम्मत लूटखसोट कानून निर्माण कि प्रक्रिया का आधार बना रहेगा।

कानून सम्मत लूटखसोट के मुद्दे का पहचान किया जाना बेहद जरूरी है, जिसके सिर्फ तीन ही तरीकें हैः

1. जब कुछ लोग, ढेर सारे लोगों के साथ लूटखसोट करते हैं।
2. जब सभी लोग एक दूसरे के साथ लूटखसोट करते हैं।
3. जब कोई भी किसी के साथ लूटखसोट नहीं करता है।

हमें, आंशिक लूटखसोट की अवस्था, सार्वभौमिक लूटखसोट की अवस्था, लूटखसोट की अनुपस्थिति वाली अवस्था में से किसी एक का चयन करना ही पड़ेगा। कानून इनमें किसी एक अवस्था की स्थिति पैदा कर सकता है।

आंशिक लूटखसोट वाली व्यवस्था। यह ऐसी व्यवस्था है जो तब तक ही प्रभावी होता है जब तक कि चुनिंदा विशेषाधिकार आंशिक हों।

समाजवाद के घुसपैठ से बचने के लिए एक व्यस्था को इसका सहारा लेना ही पड़ेगा।

सार्वभौमिक लूटखसोट वाली व्यवस्था। ऐसी व्यवस्था का खतरा उस समय होता है जब चुनिंदा विशेषाधिकार सर्वव्यापी हो। जहां कानून बनाने के विचार की कल्पना, उस सिद्धांत पर आधारित होता है कि कानून बनाने वाले सबसे पहले होते हैं।

लूटखसोट की अनुपस्थिति वाली व्यवस्था। यह सिद्धांत न्याय का सिद्धांत है, शांति का सिद्धांत है, व्यवस्था, स्थायीत्व, समझौते और बुद्धिमता वाला सिद्धांत है। इस सिद्धांत की घोषणा में जोर जोर से अपने फेफड़ों की पूरी ताकत (जो कि बहुत अपर्याप्त है, अफसोस!) से चिल्ला कर अपने मृत्यु के दिन तक करूंगा।

और पूरी ईमानदारी से, कानून के हाथों को क्या किसी और चीज की जरूरत हो सकती है? क्या वह कानून किसी के अधिकारों के दायरे के बाहर तक किसी पर आरोपित किया जा सकता है जिसका कि आवश्यक अवयव ही बल आरोपित करना है? इसे विकृत किए बगैर और सही चीज के विरुद्ध बल का प्रयोग करने वाले की मैं अवहेलना करता हूं। और चूंकि यह अत्यंत घातक है, सर्वाधिक अतार्किक सामाजिक विकृति जिसकी कल्पना संभव है, इसे अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि सर्वाधिक तलाशे जाने वाली सामाजिक समस्या का वास्तविक समाधान इन तीन सामान्य शब्दों में छिपा है – 'कानून संगठित न्याय है'।

यहां मैं हमारे समय के सर्वाधिक लोकप्रिय पूर्वाग्रह का जिक्र करूंगा। दरअसल, हमारे यहां कानून का न्यायसंगत होना भर ही पर्याप्त नहीं माना जाता बल्कि इसका परोपकारी भी होना भी आवश्यक माना जाता है। यहां नागरिकों को मुक्त एवं गैर-आक्रामक तरीके से अपनी योग्यताओं के इस्तेमाल कर भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करने की गारंटी मिलना पर्याप्त नहीं होता है। यहां कानून को उक्त सभी के साथ विस्तारित होकर कल्याणकारी, उपदेशक, नैतिकतावादी होना जरूरी है। यही समाजवाद का आकर्षक पक्ष है।

किंतु मैं दोहराना चाहूंगा कि कानून के ये दोनों उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी है। हमें उन दोनों उद्देश्यों में से किसी एक चुनना होगा। एक नागरिक एक ही समय में मुक्त और बंधन दोनों में नहीं रह सकता है। मि. दे लामार्टिन ने एक दिन मुझे लिखाः "आपका सिद्धांत मेरे कार्यक्रम का महज आधा हिस्सा है। आप आजादी पर आकर रूक गए हैं, जबकि मैं भाईचारा भी चाहता हूं।" मैंने उन्हें जवाब दियाः "आपके कार्यक्रम का दूसरा हिस्सा, पहले हिस्से को बर्बाद कर देगा।" दरअसल, मेरे लिए भाईचारा और स्वैच्छिकता दोनों को अलग कर पाना संभव नहीं है। आजादी को कानूनी ढंग से बर्बाद किए बगैर और न्याय को पैरों तले कुचले बिना कानून द्वारा भाईचारा स्थापित करने के बात मेरे लिए कल्पना में भी संभव नहीं है। कानून सम्मत लूटखसोट की दो जड़े हैं; उनमें से एक को हमनें देख लिया जो कि मानवीय लालच है। दूसरी जड़ है लोककल्याण की गलत मान्यता।

इससे पहले कि मैं आगे बढ़ूं, मुझे लगता है कि लूटखसोट शब्द के बारें में मुझे अपनी राय स्पष्ट कर देनी चाहिए।

मैं इसे नहीं मानता। क्योंकि अक्सर यह अस्पष्ट, अपरिभाषित, सापेक्षिक अथवा रूपक अर्थ में लिया जाता है। मैं इसे इसकी वैज्ञानिक मान्यता के रूप का प्रयोग करता हूं, और संपत्ति से संबंधित विपरीत विचार प्रदर्शित करता हूं। जब बल का प्रयोग कर अथवा युक्तिपूर्ण तरीके से संपत्ति का कोई हिस्सा उसके वास्तविक स्वामी के पास से उसकी सहमति के बगैर किसी और के हाथों में चला जाता है और बदले में उसे कोई मुआवजा भी नहीं दिया जाता, तो मेरे हिसाब से यह संपत्ति का हनन है और और लूटखसोट का खेल है। मैं कहता हूं कि वास्तव में यही वह चीज है जिसका दमन कानून को हमेशा और हर जगह करना चाहिए। यदि कानून स्वयं वही काम करता है जिसका उसे दमन करना चाहिए तो मैं कहूंगा कि लूटखसोट को अभी भी बढ़ावा मिल रहा है और यहां तक कि सामाजिक दृष्टिकोण से बढ़ती परिस्थितियों में भी। हालांकि ऐसी परिस्थितियों में इस लूटखसोट का जो लोग फायदा उठाते हैं

गलती उनकी नहीं है। गलती कानून की है, कानून बनाने वालों की है, स्वयं समाज की है और यहीं वह जगह है जहां राजनैतिक खतरा मंडराता रहता है।

मेरे शब्दों में जो कुछ आक्रमकता रही है, उसके लिए मुझे खेद है। मेरी मंशा इस दूसरी चीज की कभी नहीं रही है, विशेषकर अभी हमारी असहमति के इस वक्त में क्रोधित करने वाले शब्दों को जोड़ने की तो बिल्कुल नहीं। इसलिए, चाहे मेरा विश्वास किया जाए अथवा नहीं, लेकिन मैं घोषणा करता हूं कि मेरा आशय न तो किसी की नीयत पर आक्षेप करने का है और न ही किसी की नैतिकता पर। मैं तो सिर्फ उस विचारधारा पर हमला कर रहा हूं जो कि मेरे हिसाब से गलत है। मैं उस प्रणाली पर हमला कर रहा हूं जो कि मुझे अन्यायपूर्ण लगती है। यह ईरादों से इतना स्वतंत्र है कि हम में से सभी बिना ऐसा चाहे मुनाफा कमाते हैं और बिना कारणों से अवगत हुए इसे भुगतते भी हैं।

किसी भी व्यक्ति को पार्टी की भावना या भय के प्रभाव के तहत लिखना चाहिए। संरक्षणवाद, समाजवाद और यहां तक कि साम्यवाद जो कि कुल मिलाकर एक ही हैं और एक ही वृक्ष के हिस्से हैं जिनका विकास तीन अलग अलग कालों के दौरान हुआ है; पर कौन प्रश्न उठाएगा? सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि लूटखसोट की परिस्थितियां, संरक्षणवाद[3] के तहत किए जाने वाले पक्षपात के दौरान ज्यादा दिखाई पड़ती हैं। ऐसे ही साम्यवाद के दौरान इसकी सार्वभौमिकता देखने को मिलती है। किसी स्थान पर यदि यह तीनों का अनुसरण करने लगे तो फिर समाजवाद सबसे अस्पष्ट, अपरिभाषित होने के परिणामस्वरूप सबसे ईमानदार प्रतीत होगा।

---

[3] यदि फ्रांस में किसी एक वर्ग विशेष (उदाहरण के लिए मान लीजिए इंजीनियर्स) को संरक्षण दिया गया होता, तो यह अत्यंत लूटखसोट करने का मूर्खतापूर्ण उदाहरण होता और इसे बरकरार रख पाना संभव नहीं होता। इसलिए, हमें समस्त संरक्षित व्यवसाय संगठित दिखाए जाते हैं, ताकि ये इसका उद्देश्य उभयनिष्ठ प्रतीत हो। यहां तक कि अपनी नियुक्ति भी इस प्रकार करते हैं ताकि देश भर के श्रमिकों का जनसमूह उसमें आलिंगनबद्ध प्रतीत हो। इसप्रकार से उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रक्रिया का सामन्यीकरण होने के कारण लूटखसोट की प्रक्रिया समाप्त हो गई।

चाहे यह जैसा भी हो, निष्कर्ष यह है कि कानून सम्मत लूटखसोट की जड़ें परोपकार की गलत अवधारणा से जुड़ी हैं और निसंदेह इसकी मंशा प्रश्नों से परे रखी गई है।

इस मान्यता के साथ, आइए हम इसके अस्तित्व और इस प्रचलित महत्वकांक्षा वाली प्रवृति जैसे गुणों का परीक्षण करते हैं जो सार्वजनिक लूटखसोट की प्रक्रिया को सार्वजनिक भलाई का कार्य करने का एहसास कराने का दिखावा करते हैं।

समाजवादियों का कहना है कि जब कानून न्याय को संगठित कर सकता है, तो फिर इसे श्रम, शिक्षा और धर्म को संगठित क्यों नहीं करना चाहिए?

क्यों? क्या इसलिए क्योंकि कानून न्याय को अस्त व्यस्त किए बगैर श्रम, शिक्षा और धर्म को संगठित नहीं कर सकता।

स्मरण रहे, कानून एक बल है और इस बल क्षेत्र का विस्तार उन क्षेत्रों में नहीं किया जा सकता जो बल क्षेत्र के बाहर के कार्य हैं। जब कानून और बल नागरिकों को न्याय की सीमा के भीतर रखते हैं, वे उसपर कुछ और नहीं बल्कि कुछ निषेधों को लागू करते हैं। ये (कानून और बल) नागरिकों को महज दूसरों को नुकसान न पहुंचाने के लिए बाध्य करते हैं। ये न तो नागरिकों की निजता का हनन करता हैं न ही उनकी स्वतंत्रता और संपत्ति का। ये तो उनकी निजता, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा ही करते हैं। और इसप्रकार, ये आत्मरक्षा करते हुए कानून दूसरों के समान अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करते हैं। ये उस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं जो स्पष्ट रूप से हानि रहित हैं, जिनकी उपयोगिता सुगम है और जिसकी वैधानिकता विवादों से परे है। यह इतना सत्य है कि मेरे एक मित्र ने एक बार टिप्पणी की थी कि कानून का उद्देश्य जनता के साथ न्याय करना है, ऐसा कहना महज अपने विचारों को व्यक्त करना है लेकिन यह कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। ऐसा अवश्य कहा जाना चाहिए कि कानून का उद्देश्य सत्ता द्वारा किए जाने वाले अन्याय से रक्षा करना है। दरअसल, न्याय स्वतः नहीं उत्पन्न नहीं होता, यह अन्याय होता है।

किंतु जब कानून अपने अति आवश्यक घटक 'बल' के माध्यम से श्रम की एक अवस्था को किसी पंथ अथवा संप्रदाय के ऊपर शिक्षा पद्धति अथवा विषय के रूप में या पूजा पर थोपता है तब यह नकारात्मक नहीं अपितु लोगों पर सकारात्मक तरीके से कार्य करता है। यह कानून निर्माताओं की मंशा के विकल्प के तौर पर अपनी मंशा और कानून निर्माताओं की पहल के विकल्प के तौर पर अपनी पहल उपलब्ध कराता है। उन्हें किसी से मशविरा करने, किसी से तुलना करने और पूर्वानुमान लगाने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि कानून उनके लिए ये सारा काम स्वयं कर देता है। बुद्धिमता उनके लिए गैर उपयोगी बोझ है, जो उन्हें मानव बनने से रोकता है, और जिससे वे अपनी निजता, अपनी स्वतंत्रता और अपनी संपत्ति खो देते हैं।

बल के द्वारा श्रम के एक स्वरूप थोपने की कल्पना कीजिए, जो कि स्वतंत्रता का हनन नहीं है बल्कि धन का हस्तांतरण है जो बल के द्वारा आरोपित किया गया है और यह संपत्ति का हनन नहीं है। यदि आप इसके साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं तो आप यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि अन्याय को संगठित किए बगैर कानून श्रम और उद्योग संगठित नहीं कर सकता।

अपने कार्यालय के एकांतवास से एक राजनेता जब समाज पर एक निगाह डालता है तो वहां मौजूद असमानता के तमाशे में उलझ जाता है। अपने बंधु बांधवों की पीड़ा को देखकर वह शोक में पड़ जाता है। दुख के इस पहलू का प्रतिपादन विलासिता और धन के विपरीत अधिक दुखदायी होता है।

संभवतः उन्हें स्वयं से अवश्य पूछना चाहिए कि क्या ऐसी सामाजिक अवस्था प्राचीन समय की लूटखसोट, जिसका प्रयोग विजय अभियान में किया गया था; का परिणाम नहीं है? और क्या हाल के समय के लूटखसोट, कानून के द्वारा प्रभावी नहीं हैं? उन्हें स्वयं से अवश्य से पूछना चाहिए कि क्या सभी लोगों को खुशहाल और जीवन स्तर में सुधार की महत्वकांक्षा नहीं प्राप्त होनी चाहिए? क्या न्याय का शासन लोगों को प्रगति का एहसास कराने और

ईश्वर के द्वारा पाप और पूण्य के प्रतिफल के रूप में प्रदत्त समानता और व्यक्तिगत जिम्मेदारियों के लिए पर्याप्त नहीं होगा?

उनके मन में कभी यह विचार नहीं आया होगा। उनका दिमाग संयोजन, व्यवस्था, कानूनी अथवा रचनात्मक संगठन की ओर जाता है। वह अपने द्वारा पैदा की गई बीमारी को बनाए रख कर और उसे अतिरंजित (बढ़ा-चढ़ा कर) रखने में ही इलाज ढूंढते हैं।
न्याय की बात को एक बार अगर अलग रख भी दें जो कि सिर्फ निषेध की बात करता है, तो क्या कोई भी कानूनी व्यवस्था ऐसी है जिसमें लूटखसोट का सिद्धांत शामिल नहीं है?

आप कहते हैं, 'कुछ लोगों के पास पैसा नहीं है' और आप इसके लिए कानून लागू करते हैं। लेकिन कानून स्वतः स्फूर्थ धारा नहीं है जहां से समाज की प्रत्येक धाराएं स्वतंत्र रूप से आपूर्ति प्राप्त कर सकें। किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग के समर्थन के उद्देश्य से किसी बाहरी को सार्वजनिक कोष में प्रवेश की अनुमति नहीं दी जा सकती, किंतु ऐसी अवस्था का क्या जहां अन्य नागरिकों व वर्गों वहां जाने के लिए बाध्य किया जाता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति उसमें से सिर्फ उतना ही निकाल सके जितना उसने उसमें अंशदान दिया हो तो आपके कानून के मुताबिक यह लूटखसोट नहीं हुआ लेकिन इससे उस व्यक्ति की कोई मदद नहीं हो सकेगी जिसे धन की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह समानता को बढ़ावा नहीं देता है। यह समानता को बढ़ावा देने वाला उपकरण तभी बन सकता है जब यह एक पक्ष से लेकर किसी दूसरे पक्ष को देता हो और तब ऐसी स्थिति में यह लूटखसोट को बढ़ावा देने के उपकरण में तब्दील हो जाता है। इस तथ्य के आधार पर कीमतों का निर्धारण, सब्सिडी, लाभ का अधिकार, रोजगार का अधिकार, सहयोग प्राप्त करने का अधिकार, निशुल्क सार्वजनिक शिक्षा, प्रगतिशील करारोपड़, कर्ज की निशुल्कता, सामाजिक कार्यशालाओं आदि का परीक्षण करने पर आप निचले स्तर पर कानून सम्मत लूटखसोट, संगठित अन्याय की स्थिति पाएंगे।

आप कहते हैं, 'लोग ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं', और आप इसके लिए कानून लागू करते हैं। लेकिन कानून कोई टॉर्च नहीं है जिसमें

से प्रकाश पुंज पैदा होता है। यह तो उस समाज में विस्तारित होता है जिसमें वे लोग भी रहते हैं जो शिक्षित होते हैं और वे लोग भी रहते हैं जो शिक्षित नहीं है। ऐसे लोग भी रहते हैं जो शिक्षा हासिल करना चाहते हैं और ऐसे लोग भी रहते हैं जो शिक्षा प्रदान करने को लेकर काफी उत्साहित रहते हैं। इसे दो में से सिर्फ एक काम करना चाहिए; या तो इस प्रकार के आदान प्रदान की प्रक्रिया को मुक्त कर दीजिए अर्थात् शिक्षा ग्रहण करने और शिक्षित करने की चाहत को स्वयं एक दूसरे को संतुष्ट करने दीजिए या फिर लोगों की इन इच्छाओं को अपने कब्जे में ले लीजिए और कीमत चुकाने में सक्षम लोगों से लेकर प्रोफेसर नियुक्त कीजिए और दूसरों को निशुल्क प्रशिक्षण दीजिए। लेकिन, इस दूसरे तरीके में लोगों की स्वतंत्रता और संपत्ति का हनन अवश्यम्भावी है, जो कि कानून सम्मत लूटखसोट है।

आप कहते हैं, 'लोग नैतिकता अथवा धार्मिकता की कमी है' और आप इसके लिए कानून लागू करते हैं। लेकिन कानून तो एक बल है और क्या मुझे कहने की जरूरत है कि इस मामले में बल का प्रयोग एक हिसंक और बेतुका तरीका होगा। इस प्रणाली और ऐसे प्रयासों के परिणामस्वरूप, ऐसा प्रतीत होगा जैसे कि समाजवाद, समस्त आत्म संतुष्टि वाले प्रयासों के बावजूद कानून सम्मत लूटखसोट वाले दैत्य को समझने में शायद ही मदद कर सके। लेकिन यह करता क्या है? यह लोगों को बड़ी ही चतुराई से भाईचारा, एकता, संगठन और संघ आदि मोहक नाम पर भटकाता है। यहां तक कि ये स्वयं को भी गलतफहमी में डाले रखते हैं। और चूंकि हम उक्त सभी में कानून की भूमिका नहीं चाहते हैं और चूंकि हम कानून से केवल न्याय की उम्मीद रखते हैं अतः यह आरोप लगाया जाता है कि हम भाईचारे, एकता, संगठन और संघ आदि की भावना को स्वीकार नहीं करते और इस प्रकार हमारी ब्रांडिंग व्यक्तिवादी होने के तौर पर किया जाता है।

हम उन्हें आश्वस्त कर सकते हैं कि जिसे हम अस्वीकृत करते हैं वह स्वाभाविक संगठन नहीं है, बल्कि जबरदस्ती के बनाए हुए संगठन हैं।

ये संगठन मुक्त नहीं होते हैं बल्कि संगठन के प्रारूप होते जो वे हम पर थोपते हैं।
ये नैसर्गिक भाईचारा नहीं होता है बल्कि कानूनी भाईचारा होता है। ये ईश्वरसिद्ध एकता नहीं बल्कि कृत्रिम एकता है, जो कि जिम्मेदारी का अन्यायपूर्ण विस्थापन है।
समाजवाद, जैसा कि पुरानी नीति से उत्पन्न होता है, सरकार और समाज को उलझाने का काम करता है। और इसलिए जब हर बार हम सरकार द्वारा किए गए किसी कार्य पर आपत्ति जताते हैं तो वे यह निष्कर्ष निकालते हैं जैसे हमें सरकार द्वारा काम करने पर ही आपत्ति है। जब हम सरकारी शिक्षा पर आपत्ति जताते हैं तो वे यह निष्कर्ष निकालते हैं जैसे हम शिक्षा के ही खिलाफ हैं। जब हम सरकारी धर्म पर आपत्ति जताते हैं तो वे निष्कर्ष निकालते हैं कि हम किसी भी धर्म को ही नहीं मानते। जब हम सरकार द्वारा लायी जाने वाली समानता पर आपत्ति जताते हैं तो वे हमें समानता के ही खिलाफ बताते हैं। वे तो हम लोगों पर यह भी आरोप लगा सकते हैं कि हम लोगों के खाना खाने के भी खिलाफ हैं, क्योंकि हम सरकार द्वारा मकई उगाने के काम पर भी आपत्ति जताते हैं।
किसी वस्तु का उत्पादन करने का विचार, जो कि उसके पास है ही नहीं जैसे कि समृद्धि; अत्यंत विचित्र है। सकारात्मक तरीके से विचार कर देखिए कि क्या धन, विज्ञान, धर्म आदि का विकास कभी राजनैतिक विश्व में संभव हुआ है? आधुनिक राजनीतिज्ञ, विशेषकर समाजवादी विचारधारा वाले राजनीतिज्ञों के तमाम सिद्धांत एक ही उभयनिष्ठ परिकल्पना पर आधारित हैं जो अत्यंत अजीब और अभिमानी धारणा है, जो कि कभी किसी के समझ में नहीं आती है।

वे समस्त मानवजाति को दो भागों में बांटते हैं। एक (राजनीतिज्ञों को छोड़कर) सभी साधारण मनुष्य, दूसरे वे जिनको राजनेता स्वयं बनाते हैं। दूसरे प्रकार के लोग जिन्हें राजनेता स्वयं बनाते हैं वे औरों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

वास्तव में, वे यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य किसी भी क्रिया के सिद्धांत से रहित हैं और उनमें कोई विवेक नहीं है। वे स्वयं से कोई काम नहीं कर सकते हैं। वे एक निष्क्रिय पदार्थ, अप्रतिरोधी

कण, बिना आवेगों वाले परमाणु हैं और अपने अस्तित्व से उदासीन किसी वनस्पति से अधिक कुछ भी नहीं है। उन्हें संभालने के लिए दूसरे लोगों के दिमाग और हाथों की आवश्यकता होती है जो कि थोड़े बहुत सुडौल, कलात्मक और सिद्ध जैसे अनगिनत स्वरूप में हो सकते हैं।

इसके अलावा, सभी राजनेता बेहिचक स्वयं को संगठनकर्ता, खोजकर्ता, कानून निर्माता, संस्थापक अथवा प्रतिस्थापक, इच्छा शक्ति व हाथ, सार्वभौमिक पहल, सृजन शक्ति मानते हैं जिनका परम उद्देश्य उक्त समस्त बिखरी पड़ी सामग्री, यानी मनुष्ट को समाज में इकट्ठा करना है।

इन आंकड़ों से शुरू करते हुए, जिस प्रकार एक माली अपनी ईच्छा के अनुरूप वृक्षों को पिरामिड, छतरी (पैरासोल), शंकु (कोन), वृत्त (सर्कल), फूलदान (वेस), जाफ़री (एस्पलीयर्स), स्त्री (डिस्टाफ) अथवा पंखे का आकार प्रदान करता है, ठीक उसी प्रकार समाजवादी, तुच्छ इंसानों को समूहों, श्रृंखलाओं, वृत्तों, उपवृत्तों, मधुकोशों (मधुमक्खी का छत्ता) अथवा सामाजिक कार्यशालाओं जैसी विभिन्ताओं वाले कल्पनात्मक जीव का आकार प्रदान करते हैं। और जिस प्रकार एक माली को अपने वृक्षों को आकार देने के लिए कुल्हाड़ी (हैचेट), छंटाई के हुक, आरी और कैंची की जरूरत पड़ती है, ठीक उसी प्रकार राजनीतिज्ञों को समाज को आकार देने के लिए बल की आवश्यकता पड़ती है जो कि उन्हें कानून के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, कीमतों को तय करने वाले कानून, कर लगाने वाले कानून, सहायता प्रदान करने वाले कानून और शिक्षा वाले कानून।
यह बिल्कुल सच है कि समाजवादी लोग मानवजाति को सामाजिक प्रयोग के विषय के तौर पर देखते हैं। अपने प्रयोगों की सफलता के प्रति वे आश्वस्त नहीं होने की दशा में पहले वे मानवजाति के एक छोटे से हिस्से पर प्रयोग करने का अनुरोध करेंगे। समस्त प्रणालियों पर प्रयोग करने का विचार कितना प्रचलित है, यह सर्वविदित है। और उनके प्रमुखों में से एक तो वास्तव में अपने प्रयोगों के लिए संविधान सभा से उसे एक गांव को उसके समस्त निवासियों के साथ देने की मांग के लिए जाना जाता है।

यह ठीक वैसा ही है जैसे कि एक आविष्कारक सामान्य आकार की मशीन बनाने से पहले छोटी मशीन बनाता है। जैसे कि रसायनशास्त्री कुछ पदार्थ बर्बाद होने देता है, कृषि विज्ञानी किसी विचार का परीक्षण करने के लिए कुछ बीज और अपने खेत का एक कोना जाने देता है।

लेकिन माली और उसके पौधों के बीच, आविष्कारक और उसकी मशीन के बीच, रसायनशास्त्री और उसके पदार्थों के बीच, कृषि विज्ञानी और उसके बीजों के बीच अंतर के बारे में सोचिए! समाजवादी को लगता है कि वहां उतना ही अंतर है, जितना उसमें और मानव जाति में है।

इसीलिए हैरत की बात नहीं है कि उन्नीसवीं सदी के राजनेता समाज को कानून निर्माताओं की कुशलता की कृत्रिम कृति मानते हैं। पारंपरिक शिक्षा से जन्मा यह विचार हमारे देश के सभी विचारकों और महान लेखकों पर हावी हो चुका है।

इन सभी व्यक्तियों के लिए मानव जाति और विधि निर्माताओं के बीच वही संबंध है जो मिट्टी और कुम्हार के बीच है।
इतना ही नहीं, यदि उन्हें किसी व्यक्ति के हृदय में काम करने की क्षमता और उसके मस्तिष्क में विवेकशीलता दिखी है तो उन्होंने ईश्वर के इस उपहार को घातक माना है और उन्हें लगा है कि इन दो प्रभावों के कारण मानव जाति विनाश की ओर जा सकती है। उन्होंने मान लिया है कि यदि मनुष्यों को उनकी मर्जी से चलने दिया गया तो वे धर्म में फंसकर नास्तिक हो जाएंगे, निर्देश मानते-मानते अज्ञानता की ओर चले जाएंगे और श्रम तथा पारस्परिक आदान-प्रदान से कष्ट में पड़ जाएंगे।

इन लेखकों के अनुसार प्रशासकों और विधि निर्माताओं के रूप में कुछ ऐसे लोग हैं, जिन्हें ईश्वर ने केवल उनके लिए ही नहीं बल्कि शेष विश्व का ध्यान रखते हुए विपरीत प्रवृत्तियां दी हैं।

मानव जाति बुराई की ओर आकर्षित होती है, लेकिन वे अच्छाई की ओर जाते हैं; मानव जाति अंधकार की ओर चलती है, लेकिन

उन्हें प्रकाश की आकांक्षा होती है; मानव जाति पाप की दिशा में जाती है, लेकिन वे पुण्य की ओर आकर्षित होते हैं।

और यह मानकर वे बल मांगते हैं, जिसके माध्यम से वे मानव जाति की प्रवृत्तियों के स्थान पर अपनी प्रवृत्तियां चला सकें। यह आवश्यक है कि दर्शन, राजनीति या इतिहास की कोई भी पुस्तक खोली जाए और देखा जाए कि इस विचार – जो पारंपरिक शिक्षा से जन्मा है और समाजवाद का जनक है – की जड़ें हमारे देश में कितनी गहराई तक हैं; कि मानवजाति केवल जड़ तत्व है, जिसे जीवन मिलता है, साथ मिलता है, मृत्यु मिलती है, शक्ति से संपदा मिलती है; अथवा अधिक बुरी बात है कि मानव जाति के भीतर आत्मविनाश की प्रवृत्ति होती है और उसकी प्रवृत्ति पर अंकुश केवल विधि निर्माता का रहस्यमय हाथ ही लगा सकता है। पारंपरिक ज्ञान हमें हर स्थान पर नजर आता है, निष्क्रिय समाज के पीछे, कानून अथवा विधि निर्माता के नाम पर (या अविवादित प्रतिष्ठा एवं अधिकार वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की ओर इंगित करते हुई) छिपी शक्ति, जो मानवता को चलाती है, जीवंत करती है, संपन्न बनाती है तथा मानव जाति को नया जीवन देती है।

बॉस्वे का कथन है:

> मिस्रवासियों के मन पर जिन बातों का सबसे दृढ़ प्रभाव (किसके द्वारा?) था, उनमें एक था अपने देश के प्रति प्रेम... किसी को भी राज्य के लिए निरर्थक नहीं होने दिया जाता था; कानून प्रत्येक व्यक्ति को काम देता था, जो पिता से पुत्र को मिल जाता था। किसी को भी दो व्यवसाय करने की अनुमति नहीं थी और न ही कोई दूसरा व्यवसाय अपनाने की।
>
> ... किंतु एक कार्य सभी को करना ही पड़ता था और वह था विधि तथा ज्ञान का अध्ययन; धर्म एवं देश के राजनीतिक नियमन के प्रति अनभिज्ञ रहने की अनुमति किसी भी स्थिति में नहीं दी जाती थी। इतना ही नहीं प्रत्येक व्यवसाय के लिए

> एक राज्य निर्धारित कर दिया जाता था (किसके द्वारा?) . . .
>
> अच्छे कानूनों में एक सबसे अच्छी बात यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति को उनका पालन करना सिखाया जाता (किसके द्वारा?) था। मिस्र में बहुत अच्छे साधन थे और जीवन को आरामदेह तथा शांत बनाने वाले किसी भी पहलू को अनदेखा नहीं किया जाता था।

इस प्रकार बॉस्वे के अनुसार मनुष्य स्वयं कुछ प्राप्त नहीं कर पाते; देशभक्ति, संपदा, साधन, कृषि, विज्ञान – सभी कानून लागू होने के कारण अथवा राजा के द्वारा उनके पास आते हैं। उन्हें केवल निष्क्रिय रहना पड़ता है। इसी आधार पर बॉस्वे उस समय आपत्ति जताते हैं, जब डियोडॉरस मिस्रवासियों पर कुश्ती एवं संगीत त्याग देने का आरोप लगाता है। वह कहता है, "यह कैसे संभव है क्योंकि इन कलाओं का आविष्कार तो ट्रिस्मेजिस्टस ने किया था?"

फारसवासियों के साथ भी ऐसा ही है:

> राजकुमार की पहली चिंता कृषि को बढ़ावा देना थी... जिस प्रकार सेनाओं के नियमन के लिए चौकियां बनाई गई थीं, उसी प्रकार ग्रामीण कार्य के निरीक्षण के लिए कार्यालय थे...
> फारसवासियों में राजसी अधिकार के लिए बहुत अधिक सम्मान था।

यूनानवासी मेधासंपन्न थे किंतु उन्हें भी अपनी जिम्मेदारियों का उतना ही कम भान था; इतना कम कि पालतू जानवरों के ही समान बेहद आसान काम भी उन्होंने स्वयं आरंभ नहीं किया। पारंपरिक अर्थों में यह निर्विवाद सत्य है कि कोई भी वस्तु अभाव से ही लोगों के पास आती है।

स्वाभाविक रूप से साहस एवं उत्साह से भरे हुए यूनानियों का विकास पहले मिस्र से आए राजाओं एवं बस्तियों ने कर दिया था। उनसे उन्होंने शारीरिक व्यायाम, पैदल दौड़, घोड़ों एवं रथों की

दौड़ सीखीं... मिस्रवासियों ने उन्हें सबसे अच्छी बात सिखाई सार्वजनिक हित के लिए दबकर रहना और कानून का पालन करते रहना।

फेनेलन – प्राचीन वस्तुओं की शिक्षा तथा सराहना सीखने वाले और लुई चौदहवें की शक्ति के साक्षी रहे फेनेलन के भीतर यह विचार आना स्वाभाविक था कि मानव जाति को निष्क्रिय होना चाहिए और उसका दुर्भाग्य एवं संपन्नता, उसके पुण्य तथा उसके पाप कानून अथवा विधि निर्माताओं द्वारा डाले गए बाहरी प्रभाव का परिणाम होते हैं। इसलिए अपने यूटोपिया ऑफ सलेंटम में वह मनुष्यों, उनकी रुचियों, उनके गुणों, उनकी आकांक्षाओं, उनकी संपत्तियों को विधि निर्माता के निर्देश के अधीन कर देते हैं। विषय कोई भी हो, वे उसमें कुछ नहीं बोल सकते – उनके स्थान पर राजकुमार निर्णय लेते हैं। राष्ट्र आकृतिहीन पिंड है, जिसकी आत्मा राजकुमार है। विचार, दूरदर्शिता, सभी संगठनों, सभी प्रकार की प्रगति का सिद्धांत उसी के भीतर रहता है, इसीलिए सभी प्रकार की जिम्मेदारी उसी की है।

इसके प्रमाण में मैं टेलीमैकस की समूची दसवीं पुस्तक लिख सकता था। मैं पाठकों को इसे पढ़ने की सलाह देता हूं और स्वयं इस प्रतिष्ठित पुस्तक में से लिए गए कुछ अनुच्छेद उद्धृत करूंगा और इसके साथ न्याय करने वाला पहला व्यक्ति बनूंगा।

दोनों तटों पर हमने जहां भी देखा, वहां सुख-संपन्नता के साथ बसे समृद्ध नगर एवं गांव थे; प्रत्येक वर्ष सुनहरी फसलों से लहलहाने वाले खेत थे; पशुओं से भरे चरागाह थे; धरती के आशीर्वाद से किसानों को मिले फलों के बोझ से दोहरे होने वाले मजदूर थे और अपनी चरवाहे थे, जिनकी बांसुरी की मीठी धुन बार-बार गूंजती रहती थी। मेंटॉर ने कहा, "बुद्धिमान राजा के शासन में प्रजा सुखी रहती है।"...उसके बाद मेंटॉर ने मुझसे लगभग 22 हजार नगरों वाले मिस्र देश में व्याप्त प्रसन्नता एवं संपन्नता के विषय में कुछ लिखने के लिए कहा। उन्होंने नगरों में नगरपालों की उत्कृष्ट नियंत्रण व्यवस्था की; धनियों के विरुद्ध निर्धनों को दिए जाने वाले न्याय की; आज्ञापालन, श्रम एवं कला तथा शब्दों के प्रति अनुराग रखने वाले बच्चों को मिलने वाली अच्छी शिक्षा की; धार्मिक समारोहों को सटीक तरीके से मनाए जाने की; प्रत्येक पिता अपनी संतानों को जिस अनासक्ति, सम्मान प्राप्त करे की अभिलाषा, पुरुषों के भीतर स्थिति निष्ठा एवं ईश्वर के प्रति भय की शिक्षा देता है, उसकी सराहना की। देश की संपन्नता को सराहने के लिए उनके पास शब्द ही नहीं थे। उन्होंने कहा, "जिस देश में राजा इस प्रकार शासन करता है, वहां की प्रजा सुखी ही होती है।"

क्रेटे पर फेनेलन का काव्य और भी मनोरंजक है। मेंटॉर उसमें कहता हैः

> इस अद्‌भुत द्वीप में तुम्हें जो भी दिखेगा, वह मिनोस के कानूनों का परिणाम है। बच्चों को मिलने वाली शिक्षा शरीर को स्वस्थ एवं मजबूत बनाती है। आरंभ से ही वे मितव्ययी एवं परिश्रमी जीवन के अभ्यस्त हैं; माना जाता है कि सभी प्रकार के इंद्रिय सुख शरीर को निर्बल बनाते हैं; गुणों के माध्यम से अजेय बनने तथा अधिक से अधिक यश प्राप्त करने के सुख के अतिरिक्त कोई अन्य सुख उन्हें नहीं दिया जाता... वहां वे तीन ऐसे अवगुणों को दंडित करते हैं, जिन्हें अन्य लोग दंडित नहीं करते - कृतघ्नता, छल एवं लोभ। आडंबर तथा अपव्यय के लिए दंडित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि क्रेटे में उन्हें कोई जानता ही नहीं... महंगा सामान, आलीशान वस्त्र, स्वादिष्ट दावतें, भव्य महल हैं ही नहीं।

इस प्रकार मेंटॉर ने अपने शिष्य को इथाका के लोगों को परोपरकार की भावना के साथ ढालने एवं काम कराने के लिए तैयार किया तथा उसमें ये विचार भरने के लिए सलेंटम का उदाहरण दिया।

इस तरह हमें हमारे पहले राजनीतिक विचार प्राप्त होते हैं। हमें उसी प्रकार मनुष्यों के साथ व्यवहार करना सिखाया जाता है, जिस प्रकार ऑलिवर डी सेरे ने किसानों को मिट्टी तैयार करना एवं मिलाना सिखाया था।

मॉण्टेस्क्यू–

> वाणिज्य की भावना जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभी कानून उसका समर्थन करें; कि वाणिज्य द्वारा बढ़ती संपत्ति को अनुपात में बांटने वाले वही कानून प्रत्येक दरिद्र नागरिक के लिए परिस्थितियां इतनी आसान बनाएं कि वह दूसरों के समान काम कर सके और प्रत्येक धनी नागरिक को इतना सामान्य कोटि का बना दें कि उसे जीवनयापन के लिए काम करना पड़े।

इस प्रकार कानून सभी प्रकार के ऐश्वर्य समाप्त करने के लिए बने हैं।

> यद्यपि लोकतंत्र में वास्तविक समानता ही राज्य की आत्मा होती है किंतु इसे प्राप्त करना इतना कठिन है कि इस विषय में एकदम संपूर्णता की अपेक्षा सदैव नहीं की जाती। भेद को एक निश्चित बिंदु तक कम करने अथवा स्थिर कर देने के लिए जनगणना करना ही पर्याप्त है, जिसके बाद यदि असमानता हो तो धनी लोगों पर बोझ डालकर एवं निर्धनों को राहत देकर उसे समान बनाना संबंधित कानून का ही काम होगा।

यहां भी हमें कानून के द्वारा अर्थात बल के द्वारा ऐश्वर्य को समान किया जाना दिखता है।

> यूनान में दो प्रकार के गणतंत्र थे। एक सैन्य था, जैसे स्पार्टा और दूसरा वाणिज्यिक था, जैसे एथेंस। एक में यह कहा जाता था (किसके द्वारा?) कि नागरिकों को

अकर्मण्य होना चाहिए; दूसरे में परिश्रम को प्रोत्साहित किया जाता था।

यहां हमें ध्यान देना चाहिए कि विधि निर्माताओं में कितनी योग्यता हो, ताकि हम देख सकें कि सभी गुणों को समाप्त करने के बाद उन्होंने दुनिया के सामने किस प्रकार की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की।

लइकरगस ने चोरी को न्याय की भावना के साथ मिलाकर, कठिनतम दासता को परम स्वतंत्रता के साथ मिलाकर, सबसे दुष्टतापूर्ण भावनाओं को क्षमा के साथ मिलाकर अपने नगर को स्थिरता प्रदान की। ऐसा लगता है कि उसने नगर को सभी संसाधनों, कला, वाणिज्य, धन तथा दीवारों से हीन बना दिया; उसमें प्रगति की आशा से रहित महत्वाकांक्षा थी; नैसर्गिक भावना थीं, जिनमें व्यक्ति न तो बच्चा था, न पति और न ही पिता। यहां तक कि पवित्रता में भी विनम्रता नहीं थी। इस मार्ग पर चलकर स्पार्टा भव्य और सुखी बना।

यूनान की संस्थाओं में हम जो प्रवृत्ति देखते हैं, वही हमारे समय के पतन तथा भ्रष्टाचार के बीच दिखाई दी है। ईमानदार विधि निर्माताने ऐसा समूह तैयार किया है, जहां सत्यनिष्ठा उतनी ही नैसर्गिक लगती है, जितनी स्पार्टावासियों में वीरता थी। पेन महोदय सच्चे लाइकरगस हैं और यद्यपि लाइकरगस का उद्देश्य अपनी प्रजा के लिए शांति था, जबकि पेन का उद्देश्य युद्ध है फिर भी प्रजा को ले जाने वाले रास्ते के मामले में, स्वतंत्र मनुष्यों पर अपने प्रभाव की दृष्टि से, जिस पूर्वग्रह पर उन्होंने विजय प्राप्त की है और जिस भावावेश का उन्होंने दमन किया है, उसकी दृष्टि की से दोनों एक समान हैं।

पैराग्वे हमारे सामने एक और उदाहरण प्रस्तुत करता है। समाज पर प्रधानता के सुख को ही जीवन का एकमात्र सुख मान लेने का आरोप लगता रहा है, लेकिन लोगों को सुखी बनाकर उन पर शासन करना सदैव अच्छा

माना जाएगा।

> जो लोग इसी प्रकार की संस्थाएं बनाने की इच्छा रखते हैं, वे संपत्ति का वैसा ही समुदाय तैयार करेंगे, जैसा प्लेटो के रिपब्लिक में है, वैसी ही भक्ति करनी होगी जैसी उसने देवताओं के प्रति व्यक्त की है, नैतिकता बनाए रखने के लिए अजनबियों से अलग होना होगा और व्यापार नगर के माध्यम से होगा नागरिकों के माध्यम से नहीं; उन्हें वैभव के बगैर हमें कला देनी होंगी, इच्छाओं के बगैर आवश्यकता पूरी करनी होंगी।

अशिष्ट और आसक्त लोग कह सकते हैं, "यह तो मॉण्टेस्क्यू जैसा है! शानदार! जबरदस्त!" मैं अपने विचार बताने से और यह कहने से नहीं डरता:

> क्या! तुम उसे सही कहने की धृष्टता कर सकते हो? भयानक! घृणास्पद! और मैं ऐसे ढेरों उद्धरण और ला सकता हूं, जो बताते हैं कि मॉण्टेस्क्यू के अनुसार व्यक्ति, स्वतंत्रताएं, संपत्ति और स्वयं मानवजाति विधिनिर्माताओं की बुद्धिमत्ता की चक्की में पीसने भर के लिए है।

रूसो – यद्यपि इस राजनेता और डेमोक्रेटों के सबसे प्रमुख विशेषज्ञ ने समाज की इमारत को जनसामान्य की इच्छा पर निर्भर बताया है, लेकिन अन्य किसी ने भी विधिनिर्माता की उपस्थिति में मानव स्वभाव के पूर्ण निष्क्रिय होने की अवधारणा को इतना अधिक स्वीकार नहीं किया है:

> यदि यह सच है कि महान राजकुमार दुर्लभ होते हैं तो महान विधिनिर्माता तो बहुत अधिक दुर्लभ होते होंगे? राजकुमार तो केवल उस मार्ग पर चलते हैं, जो विधिनिर्माता उन्हें सुझाते हैं। इसलिए विधिनिर्माता मशीन का आविष्कार करने वाले इंजीनियर हैं और राजकुमार उसे चालू करने वाले कारीगर मात्र हैं।

और इसमें मनुष्य की क्या भूमिका है? मशीन की, जिसे चालू किया जाता है या कहीं वह मशीन बनाने में प्रयोग होने वाली सामग्री तो

नहीं है? इसलिए विधिनिर्माता तथा राजकुमार के बीच, राजकुमार तथा उसकी प्रजा के बीच उसी प्रकार के संबंध हैं जैसे कृषि पर लिखने वाले तथा कृषि विज्ञानी के बीच हैं, कृषि विज्ञानी और मिट्टी के बीच हैं। तब राजनेताओं का दर्जा कितना ऊंचा है क्योंकि वे तो विधिनिर्माता पर भी हावी रहते हैं और उन्हें आज्ञा देकर बताते हैं कि उनका काम क्या हैः

क्या आप राज्य को एकरूपता दे पाएंगे? विपरीत ध्रुवों को यथासंभव निकट ला सकेंगे। न तो धनी को कष्ट होने देंगे और न ही भिक्षुक को। यदि भूमि खराब अथवा बंजर होगी अथवा देश निवासियों को पर्याप्त सुविधा प्रदान नहीं कर सके तो उद्योग तथा कला पर ध्यान दीजिए, जिनसे होने वाले उत्पादन के बदले आप आवश्यक सामग्री प्राप्त कर पाएंगे... भूमि अच्छी हो और आपके पास निवासी कम हों तो पूरा ध्यान कृषि पर लगाएं, जिससे मनुष्य बढ़ेंगे और कलाओं को दूर रखिए क्योंकि उनसे देश में लोग कम ही होते हैं... सघन एवं सुगम तटों पर ध्यान दीजिए। समुद्र को नौकाओं से भर दीजिए और आपके पास शानदार तथा छोटा जीवन होगा। यदि आपका समुद्र केवल दुर्गम चट्टानों की ओर ले जाता है तो लोगों को बर्बर हो जाने दीजिए और मछली खाने दीजिए; वे अधिक शांति से और संभवतः अधिक बेहतर जीवन व्यतीत करेंगे तथा निश्चित रूप से अधिक प्रसन्न रहेंगे। संक्षेप में, जिन सिद्धांतों को हम सभी जानते हैं, उनके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति की अपनी परिस्थिति होती है, जिसे अलग विधान की आवश्यकता होती है।

इसीलिए पहले हिब्रू के लिए और हाल में अरबों के लिए धर्म ही प्रधान था; एथेंसवासियों के लिए साहित्य, कार्थेज और टायर के लिए वाणिज्य; रोड्स के लिए समुद्री गतिविधियां; स्पार्टा के लिए युद्ध; रोम के लिए पुण्य प्रधान था। 'स्पिरिट ऑफ लॉज' के लेखक ने वह कला समझाई है, जिसकी सहायता से विधिनिर्माता को इनमें से प्रत्येक उद्देश्य के लिए अपने कानून तैयार करने चाहिए.... किंतु यदि विधि निर्माता को अपने उद्देश्य में भ्रम हो जाए और वह उद्देश्य की प्रकृति से जन्मे सिद्धांत से अलग सिद्धांत अपना ले; एक सिद्धांत दासता की ओर ले जाता हो और दूसरा स्वतंत्रता की ओर; एक संपदा से संबंधित हो और दूसरा जनसंख्या से; एक शांति की बात करता हो और दूसरा संघर्ष की; तो कानून कमजोर हो जाएंगे, संविधान दुर्बल हो जाएगा और

राज्य में तब तक आंदोलन चलते रहेंगे, जब तक वह नष्ट नहीं हो जाता अथवा बदल नहीं जाता और एक बार फिर अजेय प्रकृति का प्रभुत्व हो जाएगा।

किंतु यदि प्रकृति इतनी अजेय है कि अपना साम्राज्य पुनः प्राप्त कर सकती है तो रूसो ने यह स्वीकार क्यों नहीं किया कि उसे अपना साम्राज्य प्राप्त करने के लिए विधि निर्माताओं की आवश्यकता आरंभ से ही नहीं थी?

वह लोगों को अपनी मर्जी का पालन क्यों नहीं करने देती, लाइकरगस या सोलन अथवा रूसो के हस्तक्षेप के बगैर लोगों को उर्वर क्षेत्र में कृषि क्यों नहीं करने देती, सघन तथा विशाल समुद्र तट पर व्यापार क्यों नहीं करने देती, जो स्वयं को धोखा देने के खतरे के साथ ऐसा करेंगे?

इसे छोड़ दें तो हम देखते हैं कि रूसो कितनी जिम्मेदारी के साथ आविष्कारकों, विधि निर्माताओं, संचालकों तथा समाज से काम लेने वालों को लाता है। इसीलिए वह उनके विषय में बहुत कठोर है।

> जो लोगों के कानूनों की जिम्मेदारी लेने का साहस करता है, उसे लगना चाहिए कि वह प्रत्येक व्यक्ति का कायाकल्प कर सकता है, जो स्वयं में संपूर्ण तथा एकमात्र है, जिसे जीवन तथा सुख बड़े समाज से मिल रहे हैं, जिसका वह हिस्सा मात्र है; उसे पता चलना चाहि कि वह मनुष्य की प्रकृति को बदल सकता है, उसे बेहतर बना सकता है और प्रकृति प्रदत्त भौतिक एवं स्वतंत्र जीवन के स्थान पर सामाजिक एवं नैतिक जीवन प्रदान कर सकता है। संक्षेप में कहें तो उसे मनुष्य से उसकी शक्तियां लेनी होंगी और उनके स्थान पर नई शक्तियां देनी होंगी।

बेचारा मानव स्वभाव! यदि उसे रूसो के शिष्यों के हवाले कर दिया गया तो उसकी गरिमा का क्या होगा?

रेनल–

> जलवायु अर्थात हवा एवं मिट्टी विधि निर्माता के लिए

पहले विषय होते हैं। उसके संसाधन नही उसे उसके कामों के बारे में बताते हैं। पहले उसे अपनी स्थानीय लोगों के बारे में पता करना चाहिए। समुद्र तट पर रहने वालों के लिए कानून समुद्री यात्रा के अनुकूल होने चाहिए... यदि बस्ती भीतरी क्षेत्रों में बसी है तो विधि निर्माता को भूमि की प्रकृति एवं उसकी उर्वरता का ध्यान रखना चाहिए....

संपत्ति के वितरण में विधि निर्माता की योग्यता विशेष रूप से दिखाई देगी। सामान्य रूप से और प्रत्येक देश में जब भी नई बस्ती बनती है तो प्रत्येक व्यक्ति को इतनी भूमि मिलनी चाहिए, जो उसके परिवार के निर्वहन हेतु पर्याप्त रहे...

यदि आप अपनी संतानों के साथ किसी निर्जन द्वीप में बसने जा रहे हैं तो सत्य के अंकुर को तर्क के विकास के साथ बढ़ने दीजिए!... लेकिन जब आप पुराने लोगों को नए देश में बसा रहे हों तो आपकी योग्यता इस बात में है कि खराब विचारों एवं रीतियों में से आप उन्हीं को चलने दें, जिन्हें सुधारना संभव नहीं है। यदि आप उन्हें फैलने से रोकना चाहते हैं तो आपको बच्चों की सामान्य एवं सार्वजनिक शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी पर काम करना होगा। राजकुमार अथवा विधि निर्माता के लिए ऐसी कोई भी नई बस्ती अथवा उपनिवेश बसाना उचित नहीं है, जहां जानकारों को पहले से भेजकर युवाओं को शिक्षित नहीं किया गया हो... नई बस्ती में प्रत्येक सुविधा के बारे में विधि निर्माता की नजर होनी चाहिए, जो लोगों के तरीकों एवं इच्छाओं को ठीक करने की इच्छा रखता है। यदि उसके पास बुद्धि एवं योग्यता है तो उसके अधीन भूमि एवं मनुष्य उसे ऐसे समाज की योजना तैयार करने के लिए प्रेरित करेंगे, जिसकी कल्पना लेखक मुश्किल से ही कर सकता है और करेगा भी तो उसमें सभी अवधारणाएं घूमती रहेंगी, जो इतनी अलग और जटिल

हैं कि उनके बारे में पूर्वानुमान करना और उन्हें एक साथ लाना बहुत कठिन है।

किसी को लगेगा कि कृषि का प्राध्यापक अपने छात्रों से कह रहा है

> कृषि विज्ञानी के लिए जलवायु ही एकमात्र नियम है। उसके संसाध नही उसका काम तय करते हैं। सबसे पहले उसे स्थानीय स्थिति पर विचार करना होगा। यदि उसके पास चिकनी मिट्टी वाली भूमि है तो उसे उसी पर काम करना होगा। यदि उसे बालू ही मिल रही है तो उसे उसी से काम चलाना होगा। प्रत्येक सुविधा कृषि विज्ञानी के पास होगी, जो अपनी भूमि को साफ करना और बेहतर बनाना चाहता होगा। यदि उसके पास योग्यता है तो उसके पास मौजूद खाद ही उसे बता देगी कि काम कैसे करना है, जबकि प्राध्यापक को इसका बहुत अस्पष्ट ज्ञान होगा और वह भी ऐसा होगा, जिसमें एक दूसरे से एकदम अलग अवधारणाओं का घालमेल होगा तथा ऐसी जटिल परिस्थितियां होंगी, जिनके बारे में कोई भी अनुमान लगाना और जिन्हें एक साथ लाना बहुत कठिन होगा।

लेकिन ओह! उत्तम लेखक किसी न किसी दिन याद करते हैं कि यह मिट्टी, यह बालू, यह खाद, जिसे आप मनमाने ढंग से इस्तेमाल कर रहे हैं, मनुष्य हैं, आपके बराबर हैं, आपकी ही तरह बुद्धिमान एवं स्वतंत्र हैं, जिन्हें आप ही की तरह ईश्वर से देखने की, अनुमान लगाने की, सोचने की और अपने लिए निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त हुई है!

मैबली- (उन्हें लग रहा है कि समय के साथ और सुरक्षा की अनदेखी के कारण कानून पुराने हो जाएंगे, इसलिए कहते हैं:)

> इन परिस्थितियों में हमें यकीन करना चाहिए कि सरकार के बंधन ढीले हैं। उनमें नया तनाव लाइए (वह पाठक से बात कर रहे हैं,) और बुराई दूर हो जाएगी... आप मनचाहे गुणों को बढ़ावा देने के बजाय बुराइयों को सजा देने के बारे में कम सोचें। इस तरीके से आप अपने गणतंत्र को अपनी युवा शक्ति

> अर्पित करेंगे। इसके प्रति अज्ञानता के कारण स्वतंत्र जनता अपनी स्वतंत्रता गंवा बैठी है! किंतु यदि बुराई इतनी फैल चुकी है कि सामान्य न्यायाधीश इसे सफलतापूर्वक ठीक नहीं कर पाते हैं तो किसी असामान्य न्यायाधीश को चुनिए, जिसका समय छोटा हो और जिसकी शक्तियां बहुत अधिक हों। नागरिकों की कल्पना पर प्रभाव डाला जाना चाहिए।

बीस खंड तक उनकी यही शैली रही है। एक समय था, जब इस प्रकार की शिक्षा यानी पारंपरिक शिक्षा के प्रभाव में हर कोई अपना रास्ता व्यवस्थित करने, तैयार करने एवं आरंभ करने के लिए स्वयं को मानव जाति से परे रख रहा था।

कॉण्डिलैक–

> मेरे प्रभु, लाइकरगस अथवा सोलॉन के चरित्र का दायित्व आप पर है। इस निबंध का पाठ समाप्त करने से पहले कानून अमेरिका अथवा अफ्रीका में कुछ जंगली लोगों के सुपुर्द कर प्रसन्न हो लीजिए। इन घुमक्कड़ों को स्थायी बस्तियों में बसास दीजिए; उन्हें जानवर पालना सिखाइए... उन सामाजिक गुणों को विकसित करने का प्रयास करें, जो प्रकृति ने उनके भीतर दिए हैं... उन्हें मानवता के कर्तव्य निभाना सिखाइए... उन्हें दंड देकर आवेग के आनंद को उनके लिए अरुचिकर बना दीजिए और आप देखेंगे कि वे जंगली अपने कानून की योजनाओं के कारण बुराई त्याग देंगे और अच्छाई ग्रहण कर लेंगे।
>
> इन सभी व्यक्तियों के पास कानून हैं। लेकिन उनमें से कुछ ही प्रसन्न हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि विधि निर्माताओं को कभी भी समाज के उद्देश्य की जानकारी ही नहीं रही, जिसका उद्देश्य समान हितों के द्वारा परिवार को एकजुट रखना है।
>
> कानून में दो बातों में निष्पक्षता रहती है, संपदा तथा

> नागरिकों की गरिमा के मामले में समानता स्थापित करने में... कानून द्वारा जितने अधिक अनुपात में समानता स्थापित की जाती है, वे प्रत्येक नागरिक के लिए उतने ही कीमती होते जाते हैं। लालच, महत्वाकांक्षा, अपव्यय, अकर्मण्यता, निष्क्रियता, ईर्ष्या, घृणा अथवा डाह उन लोगों को कैसे उद्वेलित कर सकते हैं, जो संपदा तथा गरिमा के मामले में समान हैं, और जिनकी समानता में कानून द्वारा व्यवधान पड़ने की कोई आशंका नहीं है?
>
> आपको स्पार्टा के गणतंत्र के विषय में जो बताया गया है, उससे आपको इस प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। किसी भी अन्य राज्य में प्रकृति के क्रम अथवा समानता के अनुरूप इतने अधिक कानून नहीं हैं।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में मानव जाति को निष्क्रिय पदार्थ माना जाता था, जो किसी महान राजकुमार, महान विधि निर्माता अथवा महान बुद्धिमान से कुछ भी ग्रहण कर सकता था – कोई भी रूप, आकृति, आवेग, गति एवं जीवन। उस काल में प्राचीनता का अध्ययन हुआ और प्राचीनता सभी जगह है – मिस्र में, फारस में, यूनान में और रोम में कुछ लोगों का तमाशा, जो मानव जाति को अपनी सनक के अनुसार बदल रहे थे और वहां मानव जाति बल अथवा बल अथवा पाखंड के अधीन थी। और इससे क्या सिद्ध होता है? यही कि चूंकि व्यक्ति एवं समाज सुधार योग्य हैं, इसलिए त्रुटि, अज्ञानता, निरंकुशता, दासता तथा अंधविश्वास प्राचीन काल में अधिक व्याप्त होते हों। ऊपर बताए गए लेखकों की भूल यह नहीं है कि उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया बल्कि यह है कि उन्होंने भावी पीढ़ियों की सराहना तथा नकल के लिए इसे नियम बनाने का प्रस्ताव भी रखा है। विवेकहीनता के कारण और तुच्छ रूढ़िवादिता पर विश्वास के कारण उन्होंने उसे स्वीकार किया है, जो अस्वीकार्य है, जैसे प्राचीन विश्व के कृत्रिम समाजों का वैभव, गरिमा, नैतिकता एवं सुख; वे यह नहीं समझ सके हैं कि समय ही ज्ञान उत्पन्न करता है तथा उसका प्रसार करता है; और ज्ञान में वृद्धि के अनुपात के अनुसार ही बल द्वारा प्राप्त किए गए अधिकार समाप्त होने लगते हैं और समाज का स्वयं पर अधिकार हो जाता है।

और वास्तव में वह राजनीतिक कार्य क्या है, जिसे बढ़ावा देने का प्रयास हम कर रहे हैं? वह कुछ और नहीं बल्कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति का प्रयास होता है। और स्वतंत्रता क्या है, जिसके नाम से प्रत्येक हृदय धड़कता है और जो पूरे विश्व को आंदोलित कर सकती है, जो सभी स्वतंत्रताओं का मिलन है, अंतःकरण की स्वतंत्रता, शिक्षा की, संगठन की, प्रेस की, आवागमन की, श्रम की तथा आदान-प्रदान की स्वतंत्रता; दूसरे शब्दों में कहें तो सभी हानिरहित अधिकारों का स्वतंत्र प्रयोग; और एक बार पुनः अन्य शब्दों में, सभी प्रकार की निरंकुशता का नाश, कानूनी निरंकुशता का भी, एवं कानून को तार्किक सीमाओं में बांधना अर्थात कानूनी बचाव के व्यक्तिगत अधिकार का नियमन अथवा अन्याय को समाप्ति?

यह स्वीकार करना होगा कि मानव जाति की इस प्रवृत्ति पर विशेषकर हमारे देश में पारंपरिक शिक्षा से जन्मे और सभी राजनीतिज्ञों में समान रूप से पाए जाने वाले घातक स्वभाव ने बहुत अंकुश लगाया है और वह स्वभाव है स्वयं को मानवजाति से परे रखने का, उसे अपनी इच्छा के अनुसार संवारने, व्यस्थित करने एवं नियमित करने का।

जिस समय समाज स्वतंत्रता प्राप्त करने में संघर्ष कर रहा है, उस समय उसके प्रमुख के रूप में बैठे और सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दियों के सिद्धांतों से रंगे महापुरुष रूसो के अनुसार उस पर अपने सामाजिक आविष्कारों की परोपरकारी निरंकुशता थोपने की और अपनी कल्पना में दिखने वाले सामाजिक आनंद का जुआ उसके कंधों पर रखने की ही सोचते रहते हैं।

1789 में विशेष रूप से ऐसा ही था। जेसे ही पुरानी व्यवस्था नष्ट हुई, समाज को एक अन्य कृत्रिम व्यवस्था के अधीन कर दिया गया, जिसका आरंभ सदैव एक ही बिंदु से होता है - कानून के सर्वशक्तिमान होने का।

सेंट-जस्ट -

> भविष्य विधिनिर्माता के हाथ में होता है। मानवजाति की अच्छाई के बारे में उसे ही सोचा है। मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार बनाना उसका काम है।

रोब्सपियरे-

सरकार का कार्य राष्ट्र की शारीरिक एवं नैतिक शक्तियों को उसकी संस्थाओं के उद्देश्य की ओर प्रेरित करना है।

बिलॉ वरेन्ना–

जिस जनता को स्वतंत्रता प्रदान की जानी है, उसे नए सिरे से तैयार करना होगा। प्राचीन पूर्वग्रह नष्ट करने होंगे, पुरानी परंपराएं बदलनी होंगी, पथभ्रष्ट करने वाली आसक्तियां दूर करनी होंगी, कट्टर बुराइयां समाप्त करनी होंगी। इसके लिए मजबूत शक्ति तथा उग्र आवेग की आवश्यकता होगी... नागरिकों, लाइकरगस की कठोर मितव्ययिता ने स्पार्टा गणराज्य का मजबूत आधार तैयार किया। सोलॉन की अशक्त एवं विश्वास करने वाली प्रवृत्ति ने एथेंस को दासता की ओर धकेल दिया। इस तुलना में ही सरकार का पूरा विज्ञान समाहित है।

लापेल्तिए–

मानवीय पतन की स्थिति देखकर मुझे विश्वास हो गया है एक पूरी नस्ल को जन्म देने की आवश्यकता है और सच कहूं तो नए लोगों का निर्माण करने की आवश्यकता है।

इसीलिए मनुष्य कच्चा माल मात्र है। वे अपनी मर्जी से प्रगति नहीं कर सकते। सेंट–जस्ट के अनुसार उनमें यह क्षमता ही नहीं है, यह क्षमता केवल विधिनिर्माता में है। मनुष्य केवल वही बन सकते हैं, जो उसकी इच्छा होगी। रूसो का एकदम अनुसरण करने वाले रोब्सपियरे के अनुसार विधिनिर्माता को सबसे पहले राष्ट्र के कानूनों का लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। उसके पश्चात सरकार को अपनी पूरी भौतिक तथा नैतिक शक्तियां उस लक्ष्य के पीछे लगानी होती हैं। इस बीच राष्ट्र स्वयं निष्क्रिय रहता है; और बिलॉ वरेन्ना हमें सिखाते हैं कि मनुष्य में किसी प्रकार का पूर्वग्रह, आसक्तियां, इच्छाएं नहीं होनी चाहिए, उसे केवल विधि निर्माता के कहे पर चलना चाहिए। वह तो यहां तक कहते हैं कि मनुष्य की दृढ़ मितव्ययिता ही गणतंत्र का आधार है।

हमने ऐसी स्थितियां भी देखी हैं, जब बुराई इतनी अधिक होती है कि सामान्य न्यायाधीश उन्हें दूर नहीं कर पाता। मैबली अच्छाई को

प्रोत्साहित करने के लिए तानाशाही की सिफारिश करते हैं। वह कहते हैं, "असाधारण न्यायधीश चुनिए, जिसका समय कम हो और शक्तियां अपरिमित हों। लोगों की कल्पना को प्रभावित करना आवश्यक है।" इस सिद्धांत को खारिज नहीं किया गया है।

रोब्सपियरे की बात सुनें:

> गणतांत्रिक सरकार का सिद्धांत अच्छाई होता है और उसे स्थापित करने के लिए आतंक का प्रयोग किया जाता है। हम अपने देश में नैतिकता के स्थान पर विलास, सत्यनिष्ठा के स्थान पर सम्मान, सिद्धांतों के स्थान पर रीतियां, कर्तव्य के स्थान पर शिष्टाचार, तर्क के स्थान पर विधायी आतंक, दुराचार की निंदा के स्थान पर दुख की निंदा, गौरव के स्थाना पर धृष्टता, आत्मा की महानता के स्थान पर अभिमान, यश के प्रति प्रेम के स्थान पर धन के प्रति प्रेम, अच्छे लोगों के बजाय अच्छी संगत, योग्यता के स्थान पर कपट, प्रतिभा के स्थान पर चतुराई, सत्य के स्थान पर दिखावे, सुख के आकर्षण के बजाय आनंद की थकावट, मानव की महानता के स्थान पर विशालता की क्षुद्रता, विराट, शक्तिमान, प्रसन्न जनता के स्थान पर आलसी, तुच्छ, पतित जनता को लाना चाहते हैं; अर्थात हम गणतंत्र की अच्छाइयों और चमत्कारों के स्थान पर अधिनयाकवाद की सभी बुराइयां और मूर्खताएं ले आएंगे।

यहां रोब्सपियरे स्वयं को शेष मानव जाति से कितना ऊपर रख रहे हैं! और उनकी वाणी में घमंड तो देखिए। वह मानव हृदय में महान परिवर्तन की इच्छा मात्र से संतुष्टि नहीं हैं, उन्हें नियमित सरकार से परिणामों की अपेक्षा तक नहीं है। नहीं; वह यह सब स्वयं करना चाहते हैं और आतंक की सहायता से करना चाहते हैं।

जिस संवाद से यह बचकाना और कठिन प्रतिवाद लिया गया है, उसका लक्ष्य नैतिकता के सिद्धांत दर्शाना था, जिनसे क्रांतिकारी शासन को दिशा मिलनी चाहिए। साथ ही रोब्सपियरे जब तानाशाही की मांग करते

हैं तो वह केवल विदेशी शत्रुओं को भगाने अथवा उपद्रव का दमन करने के लिए नहीं है, उसका अर्थ यह है कि वह आतंक के माध्यम से और संविधान के कामकाज के आरंभिक चरण के रूप में नैतिकता के अपने सिद्धांत लागू कर सकते हैं। वह आतंक, स्वार्थ, सम्मान, रीतियों, शिष्टाचार, कानून, दिखावे, धन, अच्छी संगत के प्रति प्रेम, कपट, चतुराई, वैभव तथा क्लेश के माध्यम से उखाड़ फेंकने की ही बात करते हैं। जब तक रोब्सपियरे इन कथित चमत्कारों को पूरा नहीं कर लेते तब तक वह विधि का शासन नहीं होने देंगे। सच है कि अपने विषय में इतना अधिक और मानव जाति के विषय में इतना कम सोचने वाले, सब कुछ नया करने की इच्छा रखने वाले ये स्वप्नदर्शी यदि स्वयं को ही सुधारने का प्रयास करते तो वह कार्य भी उनके लिए दुष्कर होता। किंतु सामान्यतः ये महानुभाव, सुधारक, विधि निर्माता एवं राजनेता मानव जाति पर तुरंत तानाशाही लादने की इच्छा नहीं रखते। नहीं, इसके लिए इसके लिए वे बहुत लोकोपकारी तथा उदार हैं। वे कानून की तानाशाही, परमसत्ता और सर्वशक्तिमान होने का तर्क भर देते हैं। वे कानून बनाने की इच्छा भर रखते हैं।

यह अजीब निरंकुशता फ्रांस में कितनी सार्वभौम रही है, यह दिखराने के लिए मुझे यहां केवल मैबली, रेनल, रूसो, फेनेलन का पूरा साहित्य ही नहीं लिखना पड़ता और बॉस्वे एवं मॉण्टेस्क्यू के लंबे उद्धरण ही नहीं देने पड़े होते बल्कि सभी की बैठकों का पूरा विवरण देना पड़ता। लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा, बस पाठकों को उन्हें पढ़ने के लिए कह दूंगा।

आश्चर्य की बात नहीं है कि बोनापार्ट को भी यह विचार भा गया था। उसने पूरे जोश के साथ इसे अपनाया और ऊर्जा के साथ इस पर अमल भी किया। रसायनशास्त्री की भूमिका में यूरोप उसके लिए प्रयोगों का पदार्थ था। लेकिन इस पदार्थ ने उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया कर दी। आधे से अधिक भ्रम दूर होने के बाद सेंट हेलेना में बोनापार्ट यह स्वीकार करता हुआ दिखा कि प्रत्येक व्यक्ति में आत्मबल होता है और उसके भीतर स्वतंत्रता के प्रति विरोध कम हो गया। इसके बाद भी वह अपनी वसीयत में अपने पुत्र को यह शिक्षा देने से नहीं चूका – "शासन करने का अर्थ है नैतिकता, शिक्षा तथा सुख का प्रसार।"

इस सबके बाद मुझे मोरेली, बेबफ, ओवन, सेंट साइमन और फोरिए

के विचारों के जटिल उद्धरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं लगती। मैं श्रम के संगठन पर लुई ब्लां की पुस्तक से कुछ अंश ही प्रस्तुत करूंगा।

"हमारे प्रकल्प में समाज को शक्ति का संवेग प्राप्त होता है।"

शक्ति से समाज को जो संवेग प्राप्त होता है, उसकी रचना किससे होती है? लुई ब्लां महोदय का प्रकल्प इसी पर विचार करता है।

दूसरी ओर समाज मानव जाति है। इसीलिए मानव जाति को अपना संवेग अथवा शक्ति लुई ब्लां से प्राप्त होता है।

उसे यह करने की स्वतंत्रता है अथवा नहीं, यह बताया जाएगा। निश्चित रूप से मानव जाति को किसी से भी सलाह लेने की स्वतंत्रता है। लेकिन उस प्रकार से नहीं, जिस प्रकार से लुई ब्लां महोदय समझते हैं। उनका आशय है कि उनका प्रकल्प कानून में बदला जाना चाहिए और बाद में उसे बलपूर्वक थोपा जाना चाहिए।

> हमारे प्रकल्प में राज्य श्रम के लिए कानून भर देगा, जिसके द्वारा पूरी स्वतंत्रता के साथ औद्योगिक आंदोलन को पूरा किया जाएगा। वह (राज्य) समाज को ऐसे ढाल पर रखेगा, जहां रखी गई कोई भी वस्तु स्वाभाविक बल से ही और स्थापित प्रणाली के स्वाभाविक तरीके से ही नीचे आ सकती है।

लेकिन यह ढलान कौन सा है? जिसका संकेत लुई ब्लां ने दिया है। क्या यह रसातल में ले जाता है? नहीं, यह सुख की ओर ले जाता है। फिर समाज स्वयं ही उसकी ओर क्यों नहीं जाता है? क्योंकि उसे पता ही नहीं होता कि उसे क्या चाहिए और उसे संवेग की आवश्यकता होती है। उसे संवेग या आवेग कौन देता है? शक्ति। और शक्ति को आवेग कौन देगा? मशीन का आविष्कारक अर्थात लुई ब्लां।

हम कभी इस चक्र से बाहर नहीं आ पाएंगे – मानव जाति निष्क्रिय है, एक महापुरुष कानून के हस्तक्षेप द्वारा उसे गति में लाता है। एक बार ढलान पर आने के बाद क्या समाज स्वतंत्रता का आनंद लेगा? निस्संदेह। और स्वतंत्रता क्या है?

सदा ध्यान रखें: स्वतंत्रता दिए गए अधिकारों में ही

नहीं होती बल्कि मनुष्य को न्याय के साम्राज्य में तथा कानून के संरक्षण में अपनी क्षमताओं का उपयोग एवं विकास करने के लिए दी गई शक्ति में भी होती है।

और यह व्यर्थ का भेद नहीं है; इसका गहरा अर्थ है और इसके परिणाम सहज हैं। जब यह मान लिया जाता है कि सच में स्वतंत्र होने के लिए मनुष्य के पास अपनी क्षमताओं का प्रयोग करने एवं उन्हें विकसित करने का अधिकार होना चाहिए तो यह भी तय हो जाता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का ऐसी शिक्षा के अधिकार पर दावा है, जो उसकी क्षमताओं को दूसरों के सामने प्रदर्शित करने के योग्य उसे बनाती हैं और ऐसे श्रम के ऐसे तरीकों पर दावा है, जिनके बगैर मानवीय गतिविधियों का कोई अर्थ ही नहीं है। अब राज्य के हस्तक्षेप से नही ंतो किसके हस्तक्षेप से समाज अपने सभी सदस्यों को आवश्यक शिक्षा एवं श्रम के साधन देगा?

इस तरह स्वतंत्रता ही शक्ति है। शक्ति किसमें होती है? शिक्षा एवं श्रम के साधन प्राप्त करने में। इसका दायित्व समाज का है। जो वंचित हैं, उन्हें श्रम के साधन समाज किसके हस्तक्षेप से देगा? राज्य के हस्तक्षेप से। राज्य उन्हें किससे प्राप्त करेगा?

इस प्रश्न का उत्तर पाठक देंगे और देखेंगे कि यह सब कहां पहुंच रहा है। हमारे समय की एक सबसे अजीब और संभवतः हमारी भावी पीढ़ियों को अचरज में डालने वाली घटना वह सिद्धांत है, जो इस तिहरी अवधारणा पर आधारित हैः मानव जाति की अतिवादी निष्क्रियता, – कानून का सर्वशक्तिमान होना, – विधि निर्माताओं का अचूक होनाः यह उस दल का पवित्र चिह्न है, जो स्वयं को एकमात्र लोकतांत्रिक दल बताता है।

यह सच है कि वह स्वयं को सामाजिक भी बताता है।
जब तक वह लोकतांत्रिक है, इसीलिए उसे मानव जाति में अटूट विश्वास है।
जब तक वह सामाजिक है, वह मानवजाति को दलित ही रखेगा।

क्या राजनीतिक अधिकारों पर चर्चा होती है? क्या विधि निर्माता को चुना जाता है? अरे, तब लोगों के पास तो विज्ञान का सहज ज्ञान होता हैः उनके पास सराहनीय विवेक होता है; उनकी इच्छा सदैव सही होती है; सामूहिक इच्छा कभी गलत नहीं हो सकती। मताधिकार भी सार्वभौमिक नहीं हो सकता। किसी पर भी समाज के प्रति दायित्व नहीं है। सही चुनाव की इच्छा तथा क्षमता के साथ लापरवाही की गई है। क्या लोगों से गलती हो सकती है? क्या हम ज्ञान के युग में नहीं हैं? क्या! क्या लोगों पर हमेशा नकेल डालकर शासन किया जाएगा? क्या प्रयास एवं बलिदान के बदले उन्हें उनके अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं? क्या उन्होंने बुद्धिमत्ता और ज्ञान का पर्याप्त प्रमाण नहीं दिया है? क्या वे परिपक्व नहीं हुए हैं? क्या वे स्वयं निर्णय लेने की स्थिति में नहीं हैं? क्यो वे अपने हितों को नहीं समझते हैं? क्या ऐसा कोई व्यक्ति अथवा वर्ग है, जो स्वयं को जनता के स्थान पर रखने, उनके स्थान पर निर्णय लेने और काम करने का दावा करने का साहस दिखा सके? नहीं, बिल्कुल नहीं; जनता स्वतंत्र होनी चाहिए और वह होगी। वे अपना काम स्वयं करना चाहते हैं और वे ऐसा ही करेंगे।

किंतु जब विधि निर्माता को चुन लिया जाता है तो वास्तव में उसके बोलने का अंदाज बदल जाता है। देश को एक बार फिर निष्क्रिय, अकर्मण्य, तुच्छ बना दिया जाता है और विधि निर्माता सर्वशक्तिमान बन जाता है। वही आविष्कार करता है, निर्देश देता है, धकेलता है, व्यवस्थित करता है। मानव जाति को केवल अधीनता माननी होती है, निरंकुशता आ गई है। और हमें समझना होगा कि यह निर्णायक है; उन लोगों के लिए, जो पहले ज्ञानी, नैतिक, एकदम संपूर्ण, अनासक्त रहे या ऐसा कुछ उनके भीतर रहा तो वह उन्हें पतन की ओर ले गया। फिर भी उन्हें थोड़ी स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए! लेकिन विवेकशील महोदय ने क्या हमें यह नहीं बताया है कि स्वतंत्रता घातक एकाधिकार की ओर ले जाती है? क्या हमें यह नहीं बताया गया कि स्वतंत्रता स्पर्द्धा होती है? और लुई ब्लां के अनुसार वह स्पर्द्धा लोगों को समाप्त करने तथा व्यापार का नाश करने का तरीका है? इसी कारण लोग जितने स्वतंत्र होते हैं, उतने ही अनुपात में नष्ट होते जाते हैं – उदाहरण के लिए स्विट्जरलैंड, हॉलैंड, इंगलैंड और अमेरिका? क्या लुई ब्लां हमें एक बार फिर यह नहीं बताते हैं कि प्रतिस्पर्द्धा से एकाधिकार

आता है और उसी कारण सस्ते की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है? कि प्रतिस्पर्द्धा खपत के स्रोत को सुखा देती है और उत्पादन के बजाय विनाश की गतिविधियों की ओर ले जाती है? कि प्रतिस्पर्द्धा के कारण उत्पादन बढ़ाना पड़ता है और खपत घटानी पड़ती है – स्वतंत्र लोग खपत नहीं करने के लिए उत्पादन कैसे करते हैं; कि उनमें दमन तथा पागलपन के अलावा कुछ नहीं होता; और लुई ब्लां के लिए यह सब देखना कितना आवश्यक है?

तब मनुष्य को किस प्रकार की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए? अंतरात्मा की स्वतंत्रता? लेकिन तब हम उन सभी को इसका लाभ उठाकर नास्तिक बनते हुए देखेंगे। शिक्षा की स्वतंत्रता? लेकिन माता-पिता शिक्षकों को इसलिए धन देंगे कि वे उनके पुत्रों को अनैतिकता तथा गलत बातें सिखाएं; साथ ही यदि हम लुई ब्लां पर विश्वास करें तो यदि शिक्षा को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के हाथों में छोड़ दिया गया तो वह राष्ट्रीय नहीं रह जाएगी और हम अपनी संतानों को तुर्कों अथवा हिंदुओं के विचार ही पढ़ाते रह जाएंगे, लेकिन विश्वविद्यालयों की कानूनी स्वायत्तता का धन्यवाद कि हमारी भाग्यशाली संतानें रोमवासियों के उदार विचारों की शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। श्रम की स्वतंत्रता? किंतु प्रतिस्पर्द्धा के कारण सभी उत्पाद खपत हुए बिना ही पड़े रहेंगे, जिससे लोग समाप्त होंगे और व्यापारी नष्ट हो जाएंगे। आदान-प्रदान या विनिमय की स्वतंत्रता? किंतु यह सुविदित है कि संरक्षणवादियों ने बार-बार बताया है कि यदि कोई व्यक्ति मुक्त रूप से विनिमय करता है तो वह नष्ट हो जाता है और धनी होने के लिए स्वतंत्रता के बगैर विनिमय आवश्यक है। मित्रता की स्वतंत्रता? किंतु समाजवादी सिद्धांत के अनुसार स्वतंत्रता तथा मित्रता एक दूसरे के विरोधी हैं क्योंकि मित्रता करने अथवा साथ जोड़ने के लिए मनुष्य की स्वतंत्रता पर हमला किया जाता है।

तब आप समझ लें कि समाजवादी लोकतांत्रिकों की अंतरात्मा मनुष्य को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दे सकती क्योंकि अपने स्वभाव के कारण वे स्वयं ही पतन तथा अनैतिकता की दिशा में जाते रहते हैं।

इस तरह इस विषय में हम अनुमान ही लगा सकते हैं कि वे सार्वभौमिक मताधिकार के लिए इतनी जिद किस आधार पर कर रहे हैं। संगठनकर्ताओं के दावे एक और प्रश्न खड़ा करते हैं, जो मैंने कई बार

उनसे पूछा है और मुझे याद नहीं पड़ता कि मुझे कभी उसका उत्तर मिला हो: चूंकि मनुष्य की मूल प्रवृत्तियां इतनी खराब हैं कि उन्हें स्वतंत्रता देना सुरक्षित नहीं है तो ऐसा कैसे मान लिया जाए कि संगठनकर्ताओं की प्रवृत्तियां हमेशा अच्छी होती हैं? क्या विधि निर्माता और उनके प्रतिनिधि मनुष्य नहीं होते हैं? क्या उन्हें लगता है कि वे शेष मनुष्यों से अलग मिट्टी के बने हैं? वे कहते हैं कि समाज को उसके ही भरोसे छोड़ दिया गया तो उसका विनाश होना अपरिहार्य है क्योंकि वह उद्दंड प्रवृत्ति का होता है। वे उसे पतन से रोकने तथा बेहतर दिशा देने की कल्पना करते हैं। इसीलिए उन्हें ईश्वर से ही ऐसी बुद्धिमत्ता तथा गुण मिले होंगे, जो उन्हें मनुष्य जाति से ऊपर रख देते हैं: उन्हें अपनी श्रेष्ठता का बखान करने दीजिए। वे हमारे चरवाहे होंगे और हम उनके मवेशी होंगे। इस व्यवस्था से उनमें स्वाभाविक श्रेष्ठता का भाव आ जाता है, जिसे सिद्ध करने की मांग उनसे करना हमारे लिए बिल्कुल न्यायोचित है।

आपने देखा होगा कि मैं सामाजिक समूहों का आविष्कार करने, उनका प्रसार करने, उनकी सिफारिश करने और अपने जोखिम पर उनका प्रयोग अपने आप पर करने के उनके अधिकार का विरोध नहीं कर रहा हूं; लेकिन मैं कानून के माध्यम से अर्थात बल एवं सार्वजनिक करों के माध्यम से स्वयं को हम पर थोपने के उनके अधिकार का विरोध करता हूं।

मैं काबे के अनुयायियों, फोरिए के अनुयायियों, प्रूधों के अनुयायियों, शिक्षाविदों और संरक्षणवादियों से अपने-अपने विचार त्यागने के लिए नहीं कहूंगा; मैं उनसे केवल उस विचार का त्याग कराउंगा, जो उन सभी में समान है अर्थात अपनी सामाजिक प्रयोशालाओं में, अपने लगातार बढ़ते बैंकों में, अपनी यूनानी-रोमन नैतिकता में और अपने वाणिज्यिक प्रतिबंधों में की मनचाही श्रेणियों में डालना, अपने लगातार बढ़ते बैंकों में हमें बलपूर्वक ले जाना। मैं उनसे कहूंगा कि हमें उनकी योजनाओं पर निर्णय लेने की क्षमता प्रयोग करने दें और यदि हमें लगे कि वे हमारे हित के प्रतिकूल हैं अथवा हमारी अंतरात्मा के विरुद्ध हैं तो उन्हें स्वीकार करने के लिए हमें बाध्य नहीं करें।

दमनकारी तथा न्यायविरुद्ध होने के साथ ही यदि यह भी मान लिया जाता है कि शक्ति एवं कराधान का सहारा उनके पास है तो यह

हानिकारक कल्पना भी जन्म लेती है कि संगठित लोगों का पतन नहीं हो सकता और मानव जाति अयोग्य है।

और यदि मानव जाति में स्वयं निर्णय लेने की योग्यता नहीं है तो वे सार्वभौमिक मताधिकार के विषय में इतना क्यों बोलते हैं?

दुख की बात है कि विचारों का यह विरोधाभाास तथ्यों में भी मिलता है; और यद्यपि फ्रांस ने दूसरों से पहले ही अपने अधिकार अथवा अपने राजनीतिक दावे प्राप्त कर लिए, लेकिन इससे वह दूसरे राष्ट्रों की तुलना में अधिक अधीन होने और संचालित होने और दबने और बंधने और धोखा खाने से बच नहीं पाया। यह उन देशों में से भी है, जहां क्रांतियों का बहुत डर रहा है और ऐसा होना एकदम स्वाभाविक ही है।

जब तक यह विचार रहेगा, जिसे हमारे सभी राजनेता भी स्वीकार करते हैं और लुई ब्लां ओजपूर्ण शब्दों में कहते हैं – "समाज को उसका आवेग शक्ति से प्राप्त होता है", जब तक मनुष्य स्वयं को अनुभव करने में समक्ष, लेकिन निष्क्रिय – अपने विवेक से और अपनी ऊर्जा से स्वयं को नैतिकता अथवा कल्याण के लिए खड़ा करने में स्वयं को अक्षम मानते रहेंगे और सभी अपेक्षाएं कानून से ही करते रहेंगे; दूसरे शब्दों में जब तक वे यह मानते रहेंगे कि राज्य के साथ उनके संबंध वैसे ही हैं, जैसे चरवाहे के साथ जानवरों के, तब तक शक्ति की जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से अधिक रहेगी। भाग्य और दुर्भाग्य, संपन्नता और विनाश, समानता और असमानता, सभी उसी से निकलेंगी। सब कुछ उसी पर होगा, सब कुछ उसी के अधीन होगा, वही सब कुछ करेगी; इसीलिए सब की जवाबदेही भी उसी की होगी। यदि हम प्रसन्न होंगे तो हमारी कृतज्ञता पर उसका अधिकार होगा; किंतु यदि हम कष्ट में होंगे तो दोष भी उसी पर होना चाहिए। क्या वास्तव में हमारे व्यक्ति एवं संपदा क्या उसी के नियंत्रण में नहीं हैं? क्या कानून सर्वशक्तिमान नहीं है? शैक्षिक एकाधिकार बनाने में उसने उन परिवारों के पिताओं की अपेक्षाओं का उत्तर देने का जिम्मा ले लिया है, जिन्हें स्वतंत्रता नहीं मिली है और यदि उन अपेक्षाओं को निराशा हाथ लगती है तो किसका दोष है?

उसने उद्योग पर नियंत्रण करते हुए उसे अधिक संपन्न बना दिया है अन्यथा उससे उसकी स्वतंत्रता छीनना मूर्खता होती; और यदि उसे कष्ट होता है तो दोष किसका है? शुल्कों के माध्यम से वाणिज्य का संतुलन

सही करने का बहाना बनाकर उसने वाणिज्य को और समृद्ध कर दिया है और यदि समृद्धि के बाद वह नष्ट हो जाता है तो कौन दोषी है? समुद्री सशस्त्र बल की स्वतंत्रता के बदलने उसके संरक्षण की बात कर उसने उन्हें आत्मनिर्भर बना दिया है; यदि वे बोझ हो जाते तो किसका दोष होता?

इसलिए उस राष्ट्र में कष्ट नहीं हैं, जिसकी सरकार ने स्वयं को जिम्मेदार नहीं बनाया है। फिर आश्चर्य कैसा कि प्रत्येक असफलता के बाद क्रांति का खतरा खड़ा हो जाता है? और इसका क्या उपचार बताया गया है? कानून के अधिकार अर्थात सरकार की जिम्मेदारी को अनंत काल के लिए बढ़ा देना। किंतु यदि सरकार वेतन बढ़ाने और नियंत्रित करने का काम अपने हाथ में लेती है और वैसा नहीं कर पाती है; यदि वह सभी जरूरतमंदों की सहायता करने चलती है और वैसा कर नहीं पाती है; यदि प्रत्येक कामगार को काम देने चलती है, लेकिन दे नहीं पाती है; यदि वह ऋण मांगने वाले सभी व्यक्तियों को ऋण देने जाती है, लेकिन ऐसा कर नहीं पाती; यदि द लामार्तिन की कलम से निकले खेदजनक शब्दों में कहें तो, "राज्य मानता है कि उसका कार्य लोगों की आत्मा को प्रकाशित करना, विकसित करना, विस्तार देना, मजबूत करना, आध्यात्मिक बनाना और पवित्र बनाना है" – यदि वह इसमें असफल रहे तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि प्रत्येक निराशा के बाद क्रांति अपरिहार्य होगी?

अब मैं इन शब्दों के साथ विषय पर लौटता हूं कि प्रश्न के आर्थिक भाग[4] के तुरंत बाद और राजनीतिक भाग के तुरंत पहले एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है। वह प्रश्न है:

कानून क्या है? इसे क्या होना चाहिए? इसका अधिकार क्षेत्र क्या है? इसकी सीमाएं क्या हैं? वास्तव में विधि निर्माता के विशेषाधिकार कहां समाप्त हो जाते हैं?

इसका उत्तर देने में मुझे कोई हिचक नहीं है। कानून अन्याय को रोकने के लिए बनाई गई सामान्य शक्ति है – संक्षेप में कानून ही न्याय है।

यह सच नहीं है कि विधि निर्माता के पास हमारे और हमारी संपत्ति के ऊपर संपूर्ण अधिकार होता है क्योंकि हम पहले से ही होते हैं और

उसका कार्य हमें कष्ट से बचाना भर होता है।

यह सच नहीं है कि कानून का ध्येय हमारी अंतरात्मा, हमारे विचारों, हमारी इच्छा, हमारी शिक्षा, हमारी भावनाओं, हमारे कार्यों, हमारे विनिमय, हमारे उपहार, हमारे आनंद पर नियंत्रण करना होता है। इसका काम यह सुनिश्चित करना होता है कि इनमें से किसी में भी किसी एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे व्यक्ति के अधिकार में बाधा न बनें।

चूंकि कानून के पास आवश्यक बल होता है, इसीलिए उसके पास बल अर्थात न्याय का अधिकार ही होता है।

और चूंकि प्रत्येक व्यक्ति को कानूनी रक्षा के मामलों में ही बल प्रयोग का अधिकार है, इसलिए सामूहिक बल अर्थात व्यक्तिगत बलों के समूह का किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

तब कानून भी उन व्यक्तिगत अधिकारों का समुच्चय मात्र है, जो कानून से पहले ही थे।

कानून ही न्याय है।

इसीलिए लोगों का दमन करने अथवा उनकी संपत्ति लूटने, चाहे परोपकार के लिए ही क्यों न हो, के बजाय उसका उद्देश्य लोगों की सुरक्षा करना तथा उनकी संपत्ति को सुरक्षित रखना होता है।

यह नहीं कहा जाना चाहिए कि जब तक यह दमन से दूर रहता है तब तक यह लोकोपकारी है क्योंकि यह विरोधाभास ही है। कानून व्यक्तियों ओर संपत्ति पर कार्रवाई किए बिना रह ही नहीं सकता; यदि वह उन्हें सुरक्षित नहीं कर पाता तो उन्हें हाथ लगाते ही नष्ट कर देता है।

कानून ही न्याय है।

और कुछ भी इतना स्पष्ट तथा सरल नहीं हो सकता, और अच्छी तरह से परिभाषित एवं सीमाबद्ध नहीं हो सकता, अथवा प्रत्येक व्यक्ति को दिखाई नहीं दे सकता; क्योंकि न्याय एक निश्चित मात्रा है, जो अडिग और अपरिवर्तनीय है और जो बढ़ता या घटता नहीं है।

इस बिंदु से चलें, कानून को धार्मिक, भाईचारे भरा, समतावादी, औद्योगिक, साहित्यिक अथवा कलात्मक बना दें और आप अस्पष्टता तथा

अनिश्चितता में डूब जाएंगे; आप अज्ञात धरातल पर पहुंच जाएंगे, जबरदस्ती के आदर्शलोक में अथवा उससे भी बुरा हुआ तो कई आदर्शलोकों के बीच, जिनमें से प्रत्येक कानून पर अधिकार करने का और आपके ऊपर छा जाने का प्रयास करता रहता है क्योंकि न्याय की तरह भाईचारे या लोकोपकार की सीमाएं निश्चित नहीं होतीं। आप कहां रुकेंगे? कानून कहां रुकेगा? एक व्यक्ति डी सेंट क्रिक अपना लोकोपकार केवल कुछ औद्योगिक वर्गों तक सीमित रखेगा और उपभोक्ताओं को निर्माताओं के पक्ष में लाने के लिए कानून की आवश्यकता होगी। विवेकशील व्यक्ति कामकाजी वर्ग के हित के लिए खड़ा होगा और कानून के जरिये उनके लिए तय वेतन दर, कपड़ों, मकान, भोजन और जीवन के लिए आवश्यक सभी सामग्रियों की मांग करेगा। तीसरे लुई ब्लां तर्क देकर कहेंगे कि यह अधूरी बंधुता होगी और कानून को उन्हें श्रम तथा शिक्षा के साधन देने ही होंगे। चौथा व्यक्ति कहेगा कि इतना होने के बाद भी असमानता की गुंजाइश बनी रहती है और कानून को एकदम सुदूर बस्तियों में भी वैभव के साधन, साहित्य तथा कलाएं आरंभ करनी चाहिए। यह साम्यवाद का मार्ग है; दूसरे शब्दों में कहें तो आज की ही तरह कानून हमेशा प्रत्येक व्यक्ति के सपनों एवं लिप्सा का रणक्षेत्र बना रहेगा।

कानून ही न्याय है।

इस कथन में हम अपने लिए सरल, अचल सरकार लाते हैं। और मैं किसी भी व्यक्ति को ललकारता हूं कि मुझे बताए कि क्रांति का, विद्रोह का अथवा सामान्य उपद्रव का विचार किस तरह अन्याय के दबाव वाली जन शक्ति के विरुद्ध खड़ा हो सकता है। ऐसी व्यवस्था में अधिक कल्याण होगा और यह कल्याण अथवा सुख बराबर बांटा जाएगा; और चूंकि मानवता कष्ट से मुक्त नहीं है, इसलिए कोई भी उसके लिए सरकार को दोषी ठहराने की नहीं सोचेगा क्योंकि यह उनके लिए बिल्कुल वैसा ही है, जैसे तापमान में उतार-चढ़ाव। यदि लोगों को वेतन तय कराने, मुफ्त ऋण दिलाने, श्रम के साधन मुहैया कराने, शुल्क अथवा सामाजिक कार्यशाला के लिए मुअदालतों के विरुद्ध खड़ा होना आता अथवा शांति के लिए न्यायाधीश पर टूटना आता तो? वे अच्छी तरह जानते हैं कि ये मामले शांति रक्षक न्यायाधीशों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और जल्द ही उन्हें पता चल जाएगा कि वे न्याय के अधिकार क्षेत्र में नहीं हैं।

किंतु यदि भाईचारे के सिद्धांत पर ही कानून बनना है, यदि यह घोषित करना है कि सभी लाभ एवं बुराइयां उससे ही निकलेंगे – कि प्रत्येक नागरिक की शिकायत के लिए तथा सभी प्रकार की सामाजिक असमानता के लिए वही जिम्मेदार है तो आप शिकायतों, परेशानियों, मुसीबतों और क्रांतियों का पिटारा खोल देंगे।

कानून ही न्याय है।

और यदि यह कुछ और होता तो बहुत अजीब होता! क्या न्याय सही नहीं है? क्या अधिकार समान नहीं हैं? कानून मेसर्स मिमरेल, डी मेलन, थियर्स या लुई ब्लां को मेरी योजनाओं के अनुसार चलाने के बजाय मुझ पर उनकी योजनाएं किस अधिकार से थोप सकता है? क्या यह माना जाए कि प्रकृति ने मुझे आदर्श लोक के आवष्किार के लिए पर्याप्त कल्पनाशीलता नहीं दी है? कया विभिन्न विचारों में से एक को चुनना और लोगों से बलपूर्वक उसे मनवाने का काम कानून का है?

कानून ही न्याय है।

और वह न कहा जाए, जो लगातार कहा जा रहा है, कि इस दृष्टि से कानून अनीश्वरवादी, व्यक्तिगत एवं निर्दयी होगा और वह मानव जाति को अपनी छवि में ढाल लेगा। यह बेतुका निष्कर्ष है, जो प्रशासन की उस आसक्ति का केंद्र है, जो कानून में मानव को देखती है।

फिर क्या? क्या यह मानता है कि यदि हम स्वतंत्र हैं तो हमें स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए? क्या वह मानता है कि यदि हमें कानून से शक्ति नहीं मिल रही है तो मिलनी ही नहीं चाहिए? क्या वह मानता है कि यदि कानून हमें अपनी क्षमताओं का स्वतंत्र उपयोग करने देगा तो हमारी क्षमताएं पंगु हो जाएंगी? क्या वह मानता है कि यदि कानून हम पर धर्म के रूप, मेलजोल के तरीके, शिक्षा की पद्धतियां, श्रम के कानून, विनिमय के निर्देश और दान की योजनाएं नहीं थोपेगा तो हम नास्तिकता, अलगाव, अज्ञानता, कष्ट एवं लोभ में फंसकर रह जाएंगे? क्या वह मानता है कि हम ईश्वर की शक्ति एवं अच्छाई को स्वीकार नहीं करेंगे; कि हम एक साथ रहना, एक दूसरे की सहायता करना, अपने अभागे भाइयों को प्रेम करना एवं उनकी सहायता करना, प्रकृति के रहस्यों का अध्ययन करना तथा अपने अस्तित्व में संपूर्णता लाने का प्रयास करना बंद कर देंगे?

कानून ही न्याय है।

और न्याय विधि, अधिकार की सत्ता, स्वतंत्रता, सुरक्षा, स्थायित्व एवं जिम्मेदारी के प्रभाव के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता, अपने जीवन की गरिमा प्राप्त करेगा और मानव जाति एक व्यवस्था एवं शांति के साथ धीमे ही सही लेकिन निश्चित रूप से अपने लिए निर्धारित प्रगति करेगी।

मुझे विश्वास है कि मेरी अवधारणा सही है क्योंकि मैं जिस प्रश्न पर मैं चर्चा कर रहा हूं, वह चाहे धार्मिक हो, दार्शनिक हो, राजनीतिक हो अथवा आर्थिक हो; चाहे उससे कल्याण, नैतिकता, समानता, अधिकार, न्याय, प्रगति, जिम्मेदारी, संपत्ति, श्रम, विनिमय, पूंजी, वेतन, कर, जनसंख्या, ऋण अथवा सरकार पर प्रभाव पड़ता हो या नहीं पड़ता हो; मैं वैज्ञानिक क्षितिज के किसी भी बिंदु से आरंभ करूं, मैं एक ही निष्कर्ष पर पहुंचता हूं – कि सामाजिक समस्या का समाधान स्वतंत्रता में है।

और क्या मेरे पास अनुभव नहीं है? दुनिया पर दृष्टि डालिए। सबसे प्रसन्न, सबसे नैतिक और सबसे शांतिपूर्ण राष्ट्र कौन हैं? वे, जहां कानून निजी गतिवधियों में कम से कम हस्तक्षेप करता है; जहां सरकार होने की अनुभूति सबसे कम होती है; जहां निजता को सबसे अधिक स्थाना मिलता है और जनमत सबसे अधिक प्रभावी होता है; जहां प्रशासनिक सबसे कम महत्वपूर्ण और सबसे कम जटिल है; जहां कराधान सबसे कम है और सबसे कम असमानता वाला है, जनता के पास असंतोष का सबसे कम कारण है; जहां व्यक्तियों एवं वर्गों की जिम्मेदारी सबसे सक्रियता भरी है और इसी कारण जहां पूर्ण नैतिकता नहीं होती है, वहां वे लगातार स्वयं में सुधार लाते रहते हैं; जहां आदान-प्रदान, भेंट तथा मेल-मिलाप पर सबसे कम बंधन है; जहां श्रम, पूंजी तथा उत्पादन पर कृत्रिम विस्थापनों की सबसे कम मार पड़ती है; जहां मनुष्य अपने स्वाभाविक तरीके से चलती है; जहां मानव की अभिलाषा पर ईश्वर के विचार को वरीयता दी जाती है; संक्षेप में, जिन्होंने इस विचार को सबसे अधिक माना है कि अधिकार की सीमाओं के भीतर सब कुछ मनुष्य के मुक्त, संपूर्णता योग्य तथा स्वैच्छिक कार्य से होना चाहिए; सार्वभौमिक न्याय के अतिरिक्त किसी के लिए भी कानून अथवा

बल के द्वारा प्रयास नहीं होना चाहिए।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि दुनिया में कई महान व्यक्ति हुए हैं; कई विधि निर्माता, संगठनकर्ता, समाज के संस्थापक, जन संचालक, राष्ट्र के जनक आदि हुए हैं। ढेरों व्यक्ति मानव जाति पर शासन करने, उसे संरक्षण प्रदान करने के लिए स्वयं को उससे ऊपर रखते हैं; ढेरों व्यक्ति उसकी देखभाल का ही काम करते हैं। इसका उत्तर मिलेगा – "तुम स्वयं ही हर समय इसी में लगे रहते हो।" बिल्कुल सही। लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि मैं एकदम दूसरे अर्थ में बोल रहा हूं; और यदि मैं सुधारकों के साथ हूं तो केवल इसीलिए ताकि उन्हें उनकी पकड़ ढीली करने के लिए मना सकूं। मैं वह नहीं कर रहा हूं, जो वॉकांसन ने अपनी मशीन के साथ किया था बल्कि वह कर रहा हूं जो शरीरविज्ञानी मानव ढांचे के साथ करता है; मैं इसका अध्ययन करूंगा और इसे सराहूंगा।

मैं इसके साथ उसी भावना से काम कर रहा हूं, जिसने एक प्रतिष्ठित यात्री को जीवन दिया था। उसने स्वयं को एक बर्बर कबीले के बीच पाया। एक शिशु ने जन्म ही लिया था और अंगूठियां, हसिया और पट्टे धारण किए हुए ज्योतिषियों, जादूगरों तथा नीम-हकीमों की भीड़ उसे घेरे हुए थी। एक ने कहा – "यदि मैंने इस बच्चे के नथुने नहीं फैलाए तो वह कभी हुक्के की गंध नहीं सूंघ पाएगा।" दूसरे ने कहा – "यदि मैं उसके कान खींचकर उसके कंधे तक नहीं लाया तो वह सुन नहीं पाएगा।" तीसरे ने कहा – "यदि मैं उसकी आंखें नहीं घुमाऊंगा तो वह कभी सूर्य की रोशनी नहीं देख पाएगा।" चौथा बोला – "यदि मैंने उसके पैर नहीं मरोड़े तो वह कभी खड़ा नहीं हो पाएगा।" पांचवें ने कहा – "यदि मैं उसके दिमाग को नहीं दबाऊंगा तो उसमें सोचने की क्षमता नहीं आएगी।" यात्री चिल्लाया – "रुको! ईश्वर जो भी करता है, अच्छा करता है; उससे अधिक जानने की शेखी मत झाड़ो; और उसने इस कमजोर से प्राणी को अंग दिए हैं, उन अंगों को स्वयं ही विकसित होने दो, व्यायाम, प्रयोग, अनुभव एवं स्वतंत्रता से स्वयं ही सशक्त होने दो।"

ईश्वर ने मानव जाति को भी वह सब दिया है, जो उसे अपने भाग्य के अनुसार कार्य करने के योग्य बनाता है। ईश्वर ने एक सामाजिक

संरचना तैयार की है और एक मानव शरीर रचना की है। सामाजिक अंग इसीलिए बनाए गए हैं ताकि वे स्वतंत्रता की हवा में सौहार्दपूर्ण तरीके से विकसित हो सकें। इसीलिए नीम-हकीमों और संगठनकर्ताओं से दूर रहें! उनकी अंगूठियों, मालाओं और शूल तथा चिमटों से बचकर रहें! उनके कृत्रिम तरीकों से बचकर रहें! उनकी सामाजिक प्रयोगशालाओं, उनकी सरकारी सनकों, उनके केंद्रीकरण, उनके शुल्कों, उनके विश्वविद्यालयों, उनके धर्मों, उनके मुद्रास्फीति बढ़ाने वाले अथवा एकाधिकार गांठने वाले बैंकों, उनकी सीमाओं, उनके बंधनों, उनकी नैतिक उपदेशों और कर के द्वारा समान बनाने के उनके तरीकों से बचकर रहें! और अब समाज पर इतनी अधिक प्रणालियां थोपने के बाद उन्हें वहीं समाप्त होने दीजिए, जहां से उन्होंने आरंभ किया था – सभी प्रणालियों को खारिज कर दीजिए और स्वतंत्रता का प्रयास कीजिए – स्वतंत्रता, जो ईश्वर और उसकी कृति में आस्था रखती है।

राजनीतिक अर्थव्यवस्था राजनीति से पहले आती है; उसे पता लगाना पड़ता है कि मानवीय हित सौहार्दपूर्ण हैं या विरोधी हैं, इसका निर्णय राजनीति द्वारा सरकार के विशेषाधिकार निर्धारित किए जाने से पहले ही हो जाना चाहिए।

लेखक के बारे में

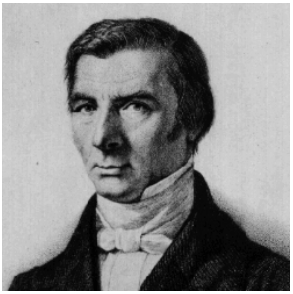

फ्रेडरिक बास्तियात (1801-1850) एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री, राजनीति के जानकार, पत्रकार और लेखक थे। वे फ्रांस में मुक्त व्यापार के अग्रणी समर्थक थे और वर्ष 1850 में असामयिक मृत्यु तक इस आंदोलन के लीडर रहें। उनके जीवन के प्रथम 45 वर्ष आजादी के समर्थन में प्रखर लेखन के लिहाज से बेहद प्रभावी पांच अंतिम वर्षों की तैयारियों में ही बीते।

बास्तियात साप्ताहिक अखबार 'ले लिब्रे- इचेंज' के संस्थापक सदस्यों में से थे। उनका कई पत्रिकाओं में योगदान था और रोजमर्रा की समस्याओं पर निकलने वाले पैम्फ्लेट्स और कई भाषणों पर उनके विचारों की छाप होती थी। उनका अधिकांश लेखन प्रत्यक्ष तौर पर 1848 की क्रांति के ठीक पहले या बाद का था। यह एक ऐसा दौर था जब फ्रांस तेजी से समाजवाद को अपना रहा था। लेजिस्लेटिव असेंबली में डेप्युटी के तौर पर बास्तियात ने निजी संपत्ति के अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किया, लेकिन बदकिस्मती से उनके अधिकांश साथियों ने उनकी अनदेखी की। फ्रेडरिक बास्तियात को हमेशा आजादी के एक ऐसे अग्रणी समर्थक के तौर पर याद किया जाएगा, जिनका लेखन आज भी सामयिक है।

अनुवादक के बारे में

यह पुस्तक वर्ष 1850 में प्रकाशित पुस्तक 'द लॉ' के प्रथम संस्करण का हिंदी रुपांतरण हैं, जिसका अनुवाद अविनाश चंद्र ने किया है। अविनाश चंद्र पेशे से पत्रकार हैं और वर्तमान में देश के पहले उदारवादी हिंदी पोर्टल 'आजादी.मी' के संपादक है। पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्हें लगभग एक दशक का कार्य अनुभव है और इन्होंने 'दैनिक जागरण' और 'राष्ट्रीय सहारा' जैसे समाचार पत्रों के माध्यम से सक्रिय पत्रकारिता का कार्य किया है। इस पुस्तक के पूर्व उन्होंने 'मोरालिटी ऑफ कैपिटलिज्म' नामक पुस्तक का अनुवाद व 'पीस, लव, लिबर्टी' व आर्थिक शब्दावलियों पर आधारित द्विभाषी शब्दकोष 'डिक्शनरी ऑफ इकोनॉमिक टर्म्स' के हिंदी रूपांतरण का संपादन किया है। समसामयिक विषयों पर लिखे गए इनके लेख विभिन्न पत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

कानून पथभ्रष्ट हो गया है! कानून, और, इससे संबंधित राष्ट्र की समस्त शक्तियां सामूहिक रूप से न केवल अपने वास्तविक मार्ग से विचलित हो गयी हैं बल्कि मैं तो कहूंगा कि वे सर्वथा विपरीत मार्ग पर बढ़ रही हैं! लोभ व लोलुपता की राह में रुकावट बनने की बजाए आज कानून समस्त प्रकार के लोभ की पूर्ति का उपकरण बन गया है! जिन अनैतिक व गैर कानूनी गतिविधियों को दंडित करना कानून का मूल उद्देश्य था वही कानून आज उन्हीं गतिविधियों का कसूरवार है! वास्तव में यदि ऐसा है, तो यह अत्यंत गंभीर विषय है और इस बाबत सभी साथी नागरिकों को आगाह करने के प्रति मैं बाध्य हूं।

– फ्रेडरिक बास्तियात

Centre for CIVIL SOCIETY
Social Change through Public Policy

Azadi आज़ादी
www.azadi.me

ATLAS NETWORK

A-69, Hauz Khas, New Delhi - 110016
Tel.: +91 11 2653 7456 | 4160 7006 | 4162 9006 Email: azadi@ccs.in
www.ccs.in • www.azadi.me
/ccsindia /ccsindiatv